श्रीअरविन्द

कारावास की कहानी

श्रीअरविन्द

कारावास की कहानी
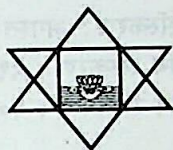
श्रीअरविन्द सोसायटी
पॉण्डिचेरी

प्रथम संस्करण : अगस्त १९८९
द्वितीय संस्करण : १९९७
तृतीय संस्करण : २००६

Price: Rs 75
ISBN 81-7060-245-9

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी ६०५००२
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

Karavas ki Kahani
Hindi Translation of *Karakahini* (Bengali)
by Sri Aurobindo

First edition 1989
Second edition 1997
Third edition 2006

Published by Sri Aurobindo Society, Pondicherry 605002
Web: www.sriaurobindosociety.org.in

Printed at Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry
PRINTED IN INDIA

विषय-सूची

"जब मैं 'अज्ञान' में सेया पड़ा था,
तो मैं एक ऐसे ध्यान-कक्ष में पहुंचा
जो साधु-संतों से भरा था।
मुझे उनकी संगति उबाऊ लगी और
स्थान एक बंदीगृह प्रतीत हुआ;
जब मैं जगा तो
भगवान् मुझे एक बंदीगृह में ले गये
और उसे ध्यान-मंदिर
और अपने मिलन-स्थल में बदल दिया।"

—श्रीअरविन्द
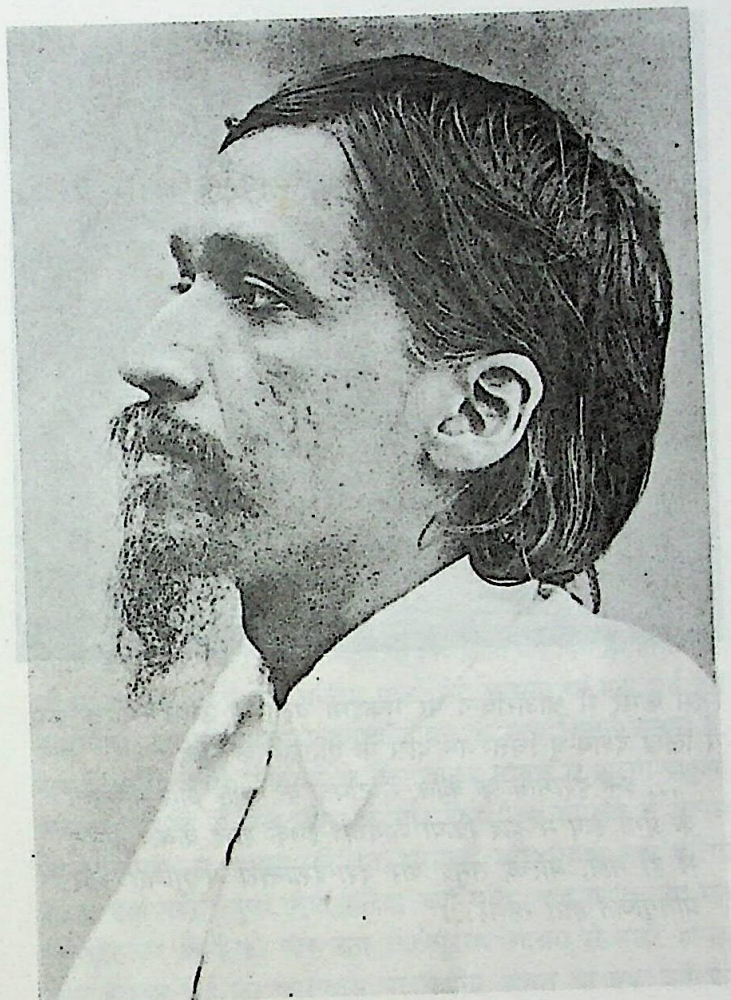
श्रीअरविन्द (१९०८-१९०९)
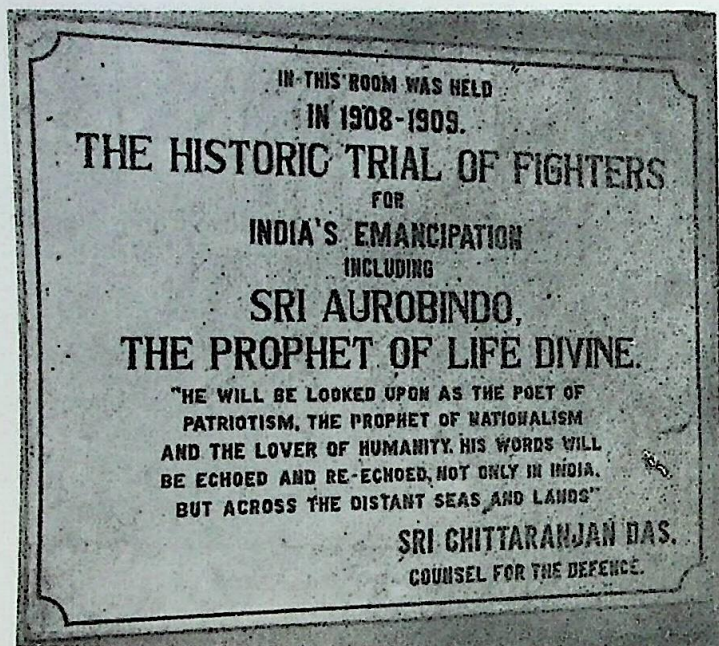
जिस कमरे में श्रीअरविन्द पर मुकद्दमा चला था उसमें स्मारक-रूप में लिखे देशबन्धु चित्तरंजन दास के ऐतिहासिक शब्द :

"... इन्हें देशभक्ति के कवि, राष्ट्रीयता के मसीहे और मानवता के प्रेमी रूप में याद किया जायेगा। इनके शब्द केवल भारत में ही नहीं, बल्कि समुद्र पार देश-देशान्तरों में गुंजित और प्रतिगुंजित होते रहेंगे...।"

कारावास की कहानी

(इस अनुवाद में जहांतक हो सका हमने श्रीअरविन्द की मूल बंगला पुस्तक के साथ-साथ चलने की कोशिश की है। —अनु०)

मैं पहली मई सन् १९०८ ई०, शुक्रवार के दिन 'वन्देमातरम्' के दफ्तर में बैठा था, तभी श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने मुजफ्फरपुर का एक टेलीग्राम मेरे हाथ में थमाया। पढ़ कर मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर में बम फटा है जिससे दो मेमों की मृत्यु हो गयी है। उसी दिन के 'एम्पायर' अंग्रेजी अखबार में यह भी पढ़ा कि पुलिस कमिश्नर ने कहा है—हम जानते हैं, इस हत्याकाण्ड में किन-किन का हाथ है और वे शीघ्र ही गिरफ्तार किये जायेंगे। तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं ही था इस सन्देह का मुख्य निशाना, पुलिस के विचार में प्रधान हत्यारा, राष्ट्र-विप्लव-प्रयासी युवकदल का मन्त्र-दाता और गुप्त नेता। नहीं जानता था कि आज का दिन ही होगा मेरे जीवन के एक अंक का अन्तिम पृष्ठ, मेरे सम्मुख था एक वर्ष का कारावास, इस समय से ही मनुष्य-जीवन के साथ जितने बन्धन हैं, सब छिन्न-भिन्न होंगे, एक वर्ष के लिए मानव समाज से अलग पशुओं की तरह पिंजरे में बन्द रहना पड़ेगा। फिर जब कर्मक्षेत्र में वापस आऊंगा तब वह पुराना परिचित अरविन्द घोष प्रवेश नहीं करेगा वरन्, एक नया मनुष्य, नया चरित्र, नयी बुद्धि, नया प्राण, नया मन ले और नये कार्य का भार उठा अलीपुरस्थ आश्रम से बाहर होगा। कहा है एक वर्ष का कारावास पर कहना उचित था एक वर्ष का वनवास, एक वर्ष का आश्रमवास। बहुत दिनों से हृदयस्थ नारायण के साक्षात् दर्शन करने की प्रबल चेष्टा में लगा था; उत्कट आशा संजोये हुए था कि जगद्धाता पुरुषोत्तम को बन्धुभाव में, प्रभुभाव में

प्राप्त करूं। किन्तु संसार की सहस्रों वासनाओं के आकर्षणों, नाना कर्मों में आसक्ति और अज्ञान के प्रगाढ़ अन्धकार के कारण कर न पाया। अन्त में परमदयालु सर्वमंगलमय श्रीहरि ने इन सब शत्रुओं को एक ही वार में समाप्त कर उसके लिए सुविधा कर दी, योगाश्रम दिखलाया और स्वयं गुरु रूप में, सखा रूप में उस क्षुद्र साधन कुटीर में अवस्थान किया। वह आश्रम था अंग्रेजों का कारागार। मैं अपने जीवन में बराबर ही यह आश्चर्यमय असंगति देखता आ रहा हूं कि मेरे हितैषी बन्धुगण मेरा जितना भी उपकार क्यों न करें, अनिष्टकारी—शत्रु किसे कहूं, मेरा अब कोई शत्रु नहीं—शत्रुओं ने ही अधिक उपकार किया है। उन्होंने अनिष्ट करना चाहा पर इष्ट ही हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेंट की कोप-दृष्टि का एकमात्र फल—मुझे भगवान् मिले। कारावास के आन्तरिक जीवन का इतिहास लिखना इस लेख का उद्देश्य नहीं है, कुछ एक घटनाओं को वर्णित करने की ही इच्छा है, किन्तु कारावास के मुख्य भाव का उल्लेख लेख के आरम्भ में ही करना उचित समझा, नहीं तो पाठक समझ बैठेंगे कि कष्ट ही है कारावास का सार। कष्ट नहीं था ऐसी बात नहीं। किन्तु अधिकांश समय आनन्द से ही बीता।

शुक्रवार की रात को मैं निश्चिन्तता से सो रहा था। सवेरे करीब पांच बजे मेरी बहिन एकदम डरी-सी मेरे कमरे में आयी और मेरा नाम ले मुझे पुकारने लगी। मैं जाग पड़ा। क्षण-भर में मेरा छोटा-सा कमरा सशस्त्र पुलिस से भर गया; उनमें थे सुपरिंटेंडेंट क्रेगन, २४ परगना के क्लार्क साहब, हमारे सुपरिचित श्रीमान् विनोदकुमार गुप्त की आनन्दमयी और लावण्यमयी मूर्ति और कई एक इंस्पेक्टर, लाल पगड़ियां, जासूस और खानातलाशी के साक्षी। हाथों में पिस्तौल लिये वे वीर-दर्प से ऐसे दौड़े आये मानों तोपों और बन्दूकों से सुरक्षित

किले पर दखल करने आये हों। आंखों से तो नहीं देखा पर सुना कि एक श्वेतांग वीर पुरुष ने मेरी बहिन की छाती पर पिस्तौल तानी थी। मैं बिछौने पर बैठा हुआ हूं, अर्द्धनिद्रित अवस्था, क्रेगन साहब ने पूछा, "अरविन्द घोष कौन हैं? क्या आप ही हैं?" मैंने कहा, "हां, मैं ही हूं अरविन्द घोष।" तुरन्त उन्होंने एक सिपाही को मुझे गिरफ्तार करने को कहा, उसके बाद क्रेगन साहब की किसी एक अश्लील बात पर क्षण-भर के लिए आपस में कहा-सुनी हो गयी। मैंने खानातलाशी का वारंट मांगा, पढ़कर उसपर सही की। वारंट में बम की बात देखकर समझ गया कि इस पुलिस सेना का आविर्भाव मुजफ्फरपुर में हुए खून से सम्बन्धित है। परन्तु यह समझ में नहीं आया कि बम या कोई विस्फोटक पदार्थ मेरे मकान में पाये जाने के पहले ही और बिना 'बॉडी-वारंट' के मुझे क्यों गिरफ्तार किया गया। तो भी इस बारे में व्यर्थ कोई आपत्ति नहीं उठायी। इसके बाद ही क्रेगन साहब के हुकुम से मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बांध दी गयी। एक हिन्दुस्तानी सिपाही वह रस्सी पकड़े मेरे पीछे खड़ा रहा। ठीक उसी समय श्रीयुत अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य और श्रीयुत शैलेन्द्र वसु को पुलिस ऊपर ले आयी, उनके भी हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी थी। करीब आधे घण्टे बाद, न जाने किसके कहने से उन्होंने हथकड़ी और रस्सी खोल दीं। क्रेगन की बातों से ऐसा लगता था मानों वह किसी खूंखार पशु की मांद में घुस आये हों, मानों हम थे अशिक्षित, हिंस्र और स्वभाव से कानून-भंगी, हमारे साथ भद्र व्यवहार या भद्रता से बात करना बेकार है। परन्तु झगड़े के बाद साहब जरा नरम पड़ गये थे। विनोद बाबू ने मेरे बारे में उन्हें कुछ समझाने की चेष्टा की। उसके बाद क्रेगन ने मुझसे पूछा, "आपने शायद बी. ए. पास किया है? ऐसे मकान में, ऐसे सज्जाविहीन कमरे में जमीन पर सोये हुए थे, इस तरह रहना आप जैसे शिक्षित व्यक्ति

के लिए क्या लज्जाजनक नहीं?" मैंने कहा, "मैं दरिद्र हूं, दरिद्र की तरह ही रहता हूं।" साहब ने तुरन्त गरजकर कहा, "तो क्या आपने धनी बनने के लिए ही यह सब षड्यन्त्र रचा है?" देश-हितैषिता, स्वार्थत्याग या दारिद्र्य-व्रत का माहात्म्य इस स्थूल बुद्धि अंग्रेज को समझाना असाध्य जान मैंने वैसी चेष्टा नहीं की।

इस बीच खानातलाशी चलती रही। यह सवेरे साढ़े पांच बजे आरम्भ हुई और प्रायः साढ़े ग्यारह बजे समाप्त हुई। बक्से के बाहर, भीतर जितनी कापियां, चिट्ठियां, कागज, कागज के टुकड़े, कविताएं, नाटक, पद्य, गद्य, प्रबन्ध, अनुवाद—जो कुछ भी मिला कुछ भी इन सर्वग्रासी खानातलाशियों के कवल से नहीं बच पाया। खानातलाशी के गवाहों में रक्षित महाशय क्षुण्णमना-से थे। बाद में बड़े दुःख के साथ उन्होंने मुझे बताया कि पुलिस अचानक बिना कुछ कहे-सुने उन्हें यहां घसीट लायी है, उन्हें रत्तीभर भी इसकी भनक नहीं थी कि ऐसे घृणित कार्य में उन्हें योगदान करना होगा। रक्षित बाबू ने बड़े ही करुण भाव से इस हरण-काण्ड की कथा सुनायी। दूसरे साक्षी समरनाथ का भाव कुछ और ही था। उन्होंने बड़ी स्फूर्ति से एक सच्चे राजभक्त की तरह यह खानातलाशी का कार्य सुसम्पन्न किया मानों to the manner born—इसीके लिए जनमे हों। खानातलाशी के समय और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। पर याद आती है गत्ते के एक छोटे डिब्बे में दक्षिणेश्वर की जो मिट्टी रखी थी क्लार्क साहब उसे बड़े सन्दिग्ध चित्त से बहुत देर तक परखते रहे मानों उनके मन में शंका थी कि हो न हो यह कोई नया, भयंकर, शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ है। एक तरह से क्लार्क साहब का सन्देह निराधार भी नहीं कहा जा सकता। अन्त में यह मान लिया गया कि यह मिट्टी के सिवा और कुछ नहीं, और इसे रासायनिक विश्लेषणकारियों के पास भेजना अनावश्यक है। खानातलाशी के समय बक्स खोलने के सिवा मैंने

और कुछ नहीं किया। मुझे कोई भी कागज या चिट्ठी दिखलायी या पढ़कर सुनायी नहीं गयी, केवल अलकधारी की एक चिट्ठी क्रेगन साहब ने अपने मनोरञ्जन के लिए उच्च स्वर में पढ़ी। बन्धुवर विनोद गुप्त अपने स्वाभाविक ललित पदविन्यास से घर को कंपाते हुए चक्कर काट रहे थे, शेल्फ में से या और कहीं से कागज या चिट्ठी निकालते, बीच-बीच में, "बहुत जरूरी, बहुत जरूरी" कह उसे क्रेगन साहब को थमाते जाते। मैं जान नहीं पाया कि ये आवश्यक कागज क्या थे? इस बारे में कोई कुतूहल भी नहीं था क्योंकि मुझे पता था कि मेरे घर में विस्फोटक पदार्थ बनाने की प्रणाली या षड्यन्त्र में हाथ होने का कोई भी सबूत मिलना असम्भव है।

मेरे कमरे का कोना-कोना छान मारने के बाद पुलिस हमें पासवाले कमरे में ले गयी। क्रेगन ने मेरी छोटी मासी का बक्सा खोला, एक-दो बार चिट्ठियों पर नजर भर डालकर "औरतों की चिट्ठियों की जरूरत नहीं" कह उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद एकतल्ले पर पुलिस महात्माओं का आविर्भाव हुआ। वहां क्रेगन का चाय-पानी हुआ। मैंने एक प्याला कोको और रोटी ली। ऐसे सुअवसर पर साहब अपने राजनीतिक मतों को युक्तितर्क द्वारा प्रतिपादित करने की चेष्टा करने लगे। मैं अविचलित चित्त से यह मानसिक यन्त्रणा सहता रहा। तो भी जिज्ञासा होती है कि शरीर पर अत्याचार करना तो पुलिस की सनातन प्रथा रही है, मन पर भी ऐसा अमानुषिक अत्याचार करना unwritten law—अलिखित कानून की चौहद्दी में पड़ता है क्या? आशा है हमारे परम मान्य देशहितैषी श्रीयुत योगेन्द्रचन्द्र घोष इस बारे में व्यवस्थापक सभा में प्रश्न उठायेंगे।

नीचे के कमरों औरं 'नवशक्ति कार्यालय' की खानातलाशी के बाद 'नवशक्ति' के एक लौह सन्दूक को खोलने के लिए पुलिस फिर से दोतल्ले पर गयी। आध घण्टे तक व्यर्थ सिर फोड़ने के बाद उसे

थाने ले जाना ही निश्चित हुआ। इस बार एक पुलिस साहब ने एक द्विचक्र-यान ढूंढ़ निकाला, उसपर लगे रेलवे लेबल पर 'कुष्टिया' लिखा था। तुरत ही कुष्टिया में साहब पर गोली चलानेवाले का वाहन मान इसे एक गुरुतर प्रमाण समझ सानन्द साथ ले गये।

प्रायः साढ़े ग्यारह बजे हम घर से रवाना हुए। फाटक के बाहर मेरे मौसाजी एवं श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु गाड़ी में उपस्थित थे। मौसाजी ने मुझसे पूछा, "किस अपराध में गिरफ्तार हुए हो?" मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता, इन्होंने घर में घुसते ही गिरफ्तार कर लिया, हाथों में हथकड़ी पहनायी, 'बॉडी वारंट' तक नहीं दिखाया।" मौसाजी के पूछने पर कि हथकड़ी पहनाये जाने का क्या कारण है, विनोद बाबू बोले, "महाशय, मेरा दोष नहीं, अरविन्द बाबू से पूछिये, मैंने ही साहब से कहकर हथकड़ी खुलवायी है।" भूपेन बाबू के पूछने पर कि क्या अपराध है, गुप्त महाशय ने नरहत्या की धारा दिखायी। यह सुन भूपेन बाबू स्तम्भित रह गये और कोई भी बात नहीं की। बाद में सुना, मेरे सॉलिसिटर श्रीयुत हरेन्द्रनाथ दत्त ने ग्रे स्ट्रीट में खानातलाशी के समय मेरी ओर से उपस्थित रहने की इच्छा प्रकट की थी पर पुलिस ने उन्हें लौटा दिया।

हम तीनों को थाने ले जाने का भार था विनोद बाबू पर। थाने में उन्होंने हमारे साथ विशेष भद्र व्यवहार किया। वहीं नहा-धोकर, खा-पीकर लालबाजार के लिए चले। कुछ घण्टे लालबाजार में बिठा रखने के बाद रायड स्ट्रीट में ले गये। शाम तक उसी शुभ स्थान पर अपना समय काटा। वहीं जासूस-पुंगव मौलवी शम्स-उल् आलम के साथ पहला आलाप व प्रीति स्थापित हुई। मौलवी साहब का तबतक न इतना प्रभाव था और न उनमें इतना उत्साह और उद्यम, बम-केस के प्रधान अन्वेषक या नॉर्टन साहब के Prompter (प्रेरक) या जीवन्त स्मरण-शक्ति के रूप में तबतक नहीं चमके थे, रामसदय बाबू ही थे

इस केस के प्रधान पण्डा। मौलवी साहब ने मुझे धर्म पर अतिशय सरस वक्तृता सुनायी। उनके अनुसार हिन्दू-धर्म और इस्लाम धर्म का मूल-मन्त्र एक ही है, हिन्दुओं के ओंकार में तीन मात्राएं हैं—अ उ म्, कुरान के पहले तीन अक्षर हैं—अ ल म, भाषातत्त्व के नियम से ल के बदले उ व्यवहृत होता है अतएव हिन्दू और मुसलमान का मन्त्र एक ही है। तथापि अपने धर्म का पार्थक्य अक्षुण्ण रखना होता है, मुसलमान के साथ खाना खाना हिन्दू के लिए निन्दनीय है। सत्यवादी होना भी धर्म का एक प्रधान अंग है। साहब लोग कहते हैं कि अरविन्द घोष हत्याकारी दल के नेता हैं, भारतवर्ष के लिए यह बड़े दुःख और लज्जा की बात है, फिर भी सत्यवादिता अपनाने से situation saved हो (स्थिति सम्भाली जा) सकती है। मौलवी का दृढ़ विश्वास था कि विपिन पाल और अरविन्द घोष जैसे उच्च चरित्रवान् व्यक्तियों ने चाहे जो भी किया हो, उसे मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे। श्रीयुत पूर्णचन्द्र लाहिड़ी वहीं बैठे थे, उन्होंने इसपर सन्देह प्रकट किया किन्तु मौलवी साहब अपनी बात पर अड़े रहे। उनकी विद्या-बुद्धि और उत्कट धर्मभाव देख मैं अतिशय चमत्कृत और हर्षित हुआ। ज्यादा बोलना धृष्टता होगी यह सोच मैंने नम्र भाव से उनका अमूल्य उपदेश सुना और उसे सयत्न हृदयांकित किया। धर्म के लिए इतने मतवाले होने पर भी मौलवी साहब ने जासूसी नहीं छोड़ी। एक बार कहने लगे, "अपने छोटे भाई को बम बनाने के लिए आपने जो बगीचा दे दिया सो बड़ी भूल की, यह बुद्धिमानी का काम नहीं हुआ।" उनकी बात का आशय समझ मैं मुस्कुराया; बोला, "महाशय, बगीचा जैसा मेरा वैसा मेरे भाई का, मैंने उसे दे दिया है या दिया भी तो बम तैयार करने के लिए दिया, यह खबर आपको कहां से मिली?" मौलवी साहब अप्रतिभ हो बोले, "नहीं, नहीं, मैं कह रहा था यदि आपने ऐसा किया हो तो।" यह महात्मा अपने जीवन-चरित का एक

पन्ना खोल, मुझे दिखाते हुए बोले, "मेरे जीवन में जितनी नैतिक या आर्थिक उन्नति हुई है उसका मूल कारण है मेरे बाप का एक अतिशय मूल्यवान् उपदेश। वे हमेशा कहा करते थे, परोसी थाली कभी नहीं ठुकराना। यही महावाक्य है मेरे जीवन का मूलमन्त्र, इसे सदा याद रखने के कारण ही हुई मेरी यह उन्नति।" ऐसा कहते समय मौलवी साहब ने ऐसी तीव्र दृष्टि से मेरी ओर घूरा मानों मैं ही हूं उनके सामने परोसी थाली। सन्ध्या-समय स्वनामधन्य श्रीयुत रामसदय मुखोपाध्याय का आविर्भाव हुआ। उन्होंने मेरे प्रति अत्यन्त दया और सहानुभूति दिखायी, सभी को मेरे खाने और सोने का प्रबन्ध करने को कहा। अगले ही क्षण कुछ लोग आकर मुझे और शैलेन्द्र को मूसलाधार वर्षा में लालबाजार हवालात में ले गये। रामसदय के साथ बस यही एक बार ही मेरी बातचीत हुई। समझ गया कि आदमी बुद्धिमान् और उद्यमी हैं किन्तु उनकी बातचीत, भावभंगी, स्वर, चलन, सब कुछ कृत्रिम और अस्वाभाविक है, हमेशा जैसे रंगमञ्च पर अभिनय कर रहे हों। ऐसे भीं आदमी होते हैं जिनका शरीर, बात, क्रिया सब मानों अनृत के अवतार हों। कच्चे मन को बहकाने में वे पक्के हैं, किन्तु जो मानव चरित्र से अभिज्ञ हैं एवं बहुत दिनों तक मनुष्यों के साथ मिलते-जुलते रहे हैं, उनकी पकड़ में वे प्रथम परिचय में ही आ जाते हैं।

लालबाजार में दो तल्ले के एक बड़े कमरे में हम दोनों को एक साथ रखा गया। खाने को मिला थोड़ा-सा जलपान। कुछ देर बाद दो अंग्रेज कमरे में घुसे, बाद में पता चला कि उनमें से एक थे स्वयं पुलिस कमिश्नर हैलिडे साहब। हम दोनों को एक साथ देख हैलिडे सार्जेंट पर बरस पड़े, मुझे दिखाकर बोले, "खबरदार, इस व्यक्ति के साथ न कोई रहे न कोई बोले।" तुरन्त ही शैलेन्द्र को हटा दूसरे कमरे में बन्द कर दिया गया। और जब सब चले गये तो हैलिडे

साहब मुझसे पूछते हैं—"इस कापुरुषोचित दुष्कर्म में भाग लेते हुए आपको शर्म नहीं आती?" "मैं इसमें लिप्त था यह मान लेने का आपको क्या अधिकार है?" उत्तर में हैलिडे ने कहा, "मैंने मान नहीं लिया, मैं सब जानता हूं।" मैंने कहा, "क्या जानते हैं या क्या नहीं यह आपको ही पता होगा पर मैं इस हत्याकाण्ड के साथ अपना सम्पर्क पूर्णतया अस्वीकार करता हूं।" हैलिडे ने और कोई बात नहीं की।

उस रात मुझे देखने और कई दर्शक आये, सभी पुलिस के। इनके आने में एक रहस्य निहित था, उस रहस्य की आजतक मैं थाह नहीं ले पाया। गिरफ्तारी से डेढ़ माह पहले एक अपरिचित सज्जन मुझसे मिलने आये थे, उन्होंने कहा था, "महाशय, आपसे मेरा परिचय नहीं है फिर भी आपके प्रति श्रद्धा-भक्ति है, इसीलिए आपको सतर्क करने आया हूं और जानना चाहता हूं कि कोननगर में किसी से आपका परिचय है क्या? वहां कभी गये थे या वहां कोई घर-बार है क्या?" मैंने कहा, "घर नहीं है, कोननगर एक बार गया था, कइयों से परिचय भी है।" उन्होंने कहा, "और कुछ नहीं कहूंगा पर कोननगर में अब और किसी से मत मिलियेगा, आप और आपके भाई बारीन्द्र के विरुद्ध दुष्टजन षड्यन्त्र रच रहे हैं, शीघ्र ही वे आप लोगों को विपत्ति में डालेंगे। मुझसे और कोई बात न पूछें।" मैंने कहा, "महाशय, मैं समझ नहीं पाया इस अधूरे संवाद से मेरा क्या उपकार हुआ, फिर भी आप उपकार करने आये थे उसके लिए धन्यवाद। मैं और कुछ नहीं जानना चाहता। भगवान् पर मुझे पूर्ण विश्वास है, वे ही सदा मेरी रक्षा करेंगे, उस विषय में स्वयं यत्न करना या सतर्क रहना निरर्थक है।"

उसके बाद इस सम्बन्ध में और कोई खबर नहीं मिली। मेरे इस अपरिचित हितैषी ने मिथ्या कल्पना नहीं की थी, इसका प्रमाण उस रात मिला। एक इंस्पेक्टर और कुछ पुलिस कर्मचारियों ने आकर

कोननगर की सारी बातें जान लीं। उन्होंने पूछा, "कोननगर क्या आपका आदि स्थान है? वहां मकान है क्या? वहां कभी गये थे? कब गये थे? क्यों गये थे? कोननगर में बारीन्द्र की कोई सम्पत्ति है क्या?"—इस तरह के अनेक प्रश्न पूछे गये। बात क्या है यह जानने के लिए मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर देता गया। इस चेष्टा में सफलता नहीं मिली; किन्तु प्रश्नों से और पुलिस के पूछने के ढंग से लगा कि पुलिस को जो खबर मिली है वह सच है या झूठ इसकी छान-बीन चल रही है। अनुमान लगाया जैसे ताई-महाराज के मुकद्दमे में तिलक को भण्ड, मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और अत्याचारी करार कर देने की चेष्टा हुई थी एवं उस चेष्टा में बम्बई सरकार ने योग दे प्रजा के धन का अपव्यय किया था,—वैसे ही मुझे भी कुछ-एक लोग मुसीबत में डालने की चेष्टा कर रहे हैं।

रविवार का सारा दिन हवालात में कटा। मेरे घर के सामने सीढ़ी थी। सवेरे देखा कि कुछ अल्पवयस्क लड़के सीढ़ी से उतर रहे हैं। शक्ल से नहीं जानता था पर अन्दाज़ लगाया कि ये भी इसी मुकद्दमे में पकड़े गये हैं, बाद में जान पाया कि ये थे मानिकतला बगीचे के लड़के। एक माह बाद जेल में उनसे बातचीत हुई। कुछ देर बाद मुझे भी हाथ-मुंह धोने नीचे ले जाया गया—नहाने का कोई प्रबन्ध नहीं था अतः नहीं नहाया। उस दिन सवेरे खाने को मिला दाल-भात, जबरदस्ती कुछ-एक कौर उदरस्थ किये, बाकी छोड़ना पड़ा। शाम को मिले मुरमुरे। तीन दिन तक यही था हमारा आहार। किन्तु इतना जरूर कहूंगा कि सोमवार को सार्जेंट ने स्वयं ही मुझे चाय और टोस्ट खाने को दिये।

बाद में सुना कि मेरे वकील ने कमिश्नर से घर से खाना भेजने की अनुमति मांगी थी पर हैलिडे साहब नहीं माने। यह भी सुना कि आसामियों से वकील या एटर्नी का मिलना निषिद्ध है। पता नहीं यह

निषेध कानूनन ठीक है या नहीं। वकील का परामर्श मिलने से यद्यपि मुझे कुछ सुविधा होती फिर भी नितान्त आवश्यकता नहीं थी, किन्तु उससे अनेकों को मुकद्दमे में क्षति पहुंची। सोमवार को हमें कमिश्नर के सामने हाज़िर किया गया। मेरे साथ अविनाश और शैलेन थे। सबको अलग-अलग दल में ले जाया गया। पूर्वजन्म के पुण्यफल से हम तीनों पहले गिरफ्तार हुए थे और कानून की जटिलता काफी अनुभव कर चुके थे इसलिए तीनों ने ही कमिश्नर के आगे कुछ भी बोलने से इन्कार कर दिया। अगले दिन हमें थौर्नहिल मैजिस्ट्रेट की कचहरी में ले जाया गया। इसी समय श्रीयुत कुमारकृष्ण दत्त, मान्युएल साहब और मेरे एक सम्बन्धी से भेंट हुई। मान्युएल साहब ने मुझसे पूछा, "पुलिस कहती है आपके घर में अनेक सन्देहजनक चिट्ठी-पत्री मिली हैं। ऐसी चिट्ठियां या कागजात क्या सचमुच थे?" मैंने कहा, "निस्सन्देह कह सकता हूं, नहीं थे, होना बिलकुल असम्भव है।" निश्चय ही तब 'मिष्टान्न पत्र' ('sweets letter') या scribbling (घसीट लेख) की बात नहीं जानता था। अपने सम्बन्धी से कहा, "घर में कह देना कि डरें नहीं, मेरी निर्दोषिता सम्पूर्णतया प्रमाणित होगी।" उस समय से ही मेरे मन में दृढ़ विश्वास उपजा कि यह होगा ही। पहले-पहल निर्जन कारावास में मन जरा विचलित हुआ किन्तु तीन दिन प्रार्थना और ध्यान में बिताने के फलस्वरूप निश्चला शान्ति और अविचलित विश्वास ने प्राण को पुनः अभिभूत किया।

थौर्नहिल साहब के इजलास से हमें गाड़ी में अलीपुर ले जाया गया। उस दल में थे निरापद, दीनदयाल, हेमचन्द्र दास आदि। इनमें हेमचन्द्र दास को पहचानता था, एक बार मेदिनीपुर में उनके यहां ठहरा था। तब किसे पता था कि इस तरह बन्दी रूप में जेल जाते हुए उनसे मिलना होगा। अलीपुर में मजिस्ट्रेट की अदालत में हमें काफी देर ठहरना पड़ा पर मजिस्ट्रेट के सामने हमें हाज़िर नहीं किया

गया, केवल अन्दर से वे हुकुम लिखा लाये। हम फिर से गाड़ी में चढ़े, तब एक सज्जन मेरे पास आकर बोले, "सुनता हूं कि इन्होंने आपके निर्जन कारावास की व्यवस्था की है, हुकुम लिखा जा रहा है। शायद किसी से भी भेंट-मुलाकात करने नहीं देंगे। इस बार यदि घर पर कुछ कहलाना चाहें तो मैं सन्देश पहुंचा दूंगा।" मैंने उन्हें धन्यवाद दिया, किन्तु जो कहना था वह मैं अपने आत्मीय द्वारा कहला चुका था अतः उनसे और कुछ नहीं कहा। अपने प्रति देश-वासियों की सहानुभूति और अयाचित अनुग्रह के दृष्टान्त के रूप में मैंने इस घटना का उल्लेख किया। इसके बाद कोर्ट से जेल में पहुंचा, हमें जेल के कर्मचारियों के हाथों में सौंप दिया गया। जेल में घुसने से पहले हमें स्नान कराया, जेल की पोशाक पहनने को दी और हमारे कुर्ते, धोती आदि धोने के लिए ले गये। चार दिन बाद स्नान करने पर हमें स्वर्गसुख की अनुभूति हुई। स्नान के बाद सबको अपनी-अपनी कोठरी में पहुंचा दिया गया। मैं भी अपने निर्जन कारागार में घुसा, छोटी-सी कोठरी के लौह-कपाट बन्द हो गये। अलीपुर कारावास का आरम्भ हुआ था ५ मई को। मुक्त हुआ अगले साल ६ मई को।

मेरा निर्जन कारागृह था नौ फीट लम्बा और पांच-छः फीट चौड़ा, इसमें कोई खिड़की नहीं, सामने था एक बृहत् लौह कपाट; यह पिंजरा ही बना मेरा निर्दिष्ट वासस्थान। कमरे के बाहर था एक छोटा-सा पथरीला आंगन और ईंट की ऊंची दीवार, सामने था लकड़ी का दरवाजा। उस दरवाजे के ऊपरी भाग में मनुष्य की आंख की ऊंचाई पर था एक गोलाकार छेद, दरवाजा बन्द होने पर सन्तरी उसमें आंख सटा थोड़ी-थोड़ी देर में झांकता था कि कैदी क्या कर रहा है। किन्तु मेरे आंगन का दरवाजा प्रायः खुला रहता। ऐसे छः
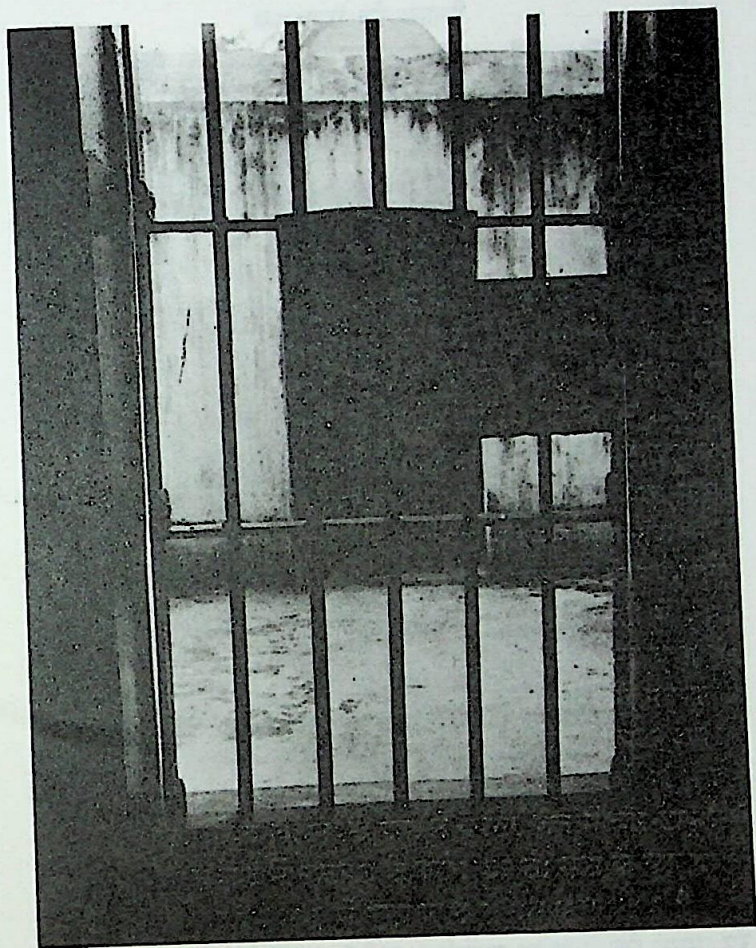
"यह पिंजरा ही बना मेरा वासस्थान।
कमरे के बाहर था एक छोटा-सा पथरीला आंगन... "
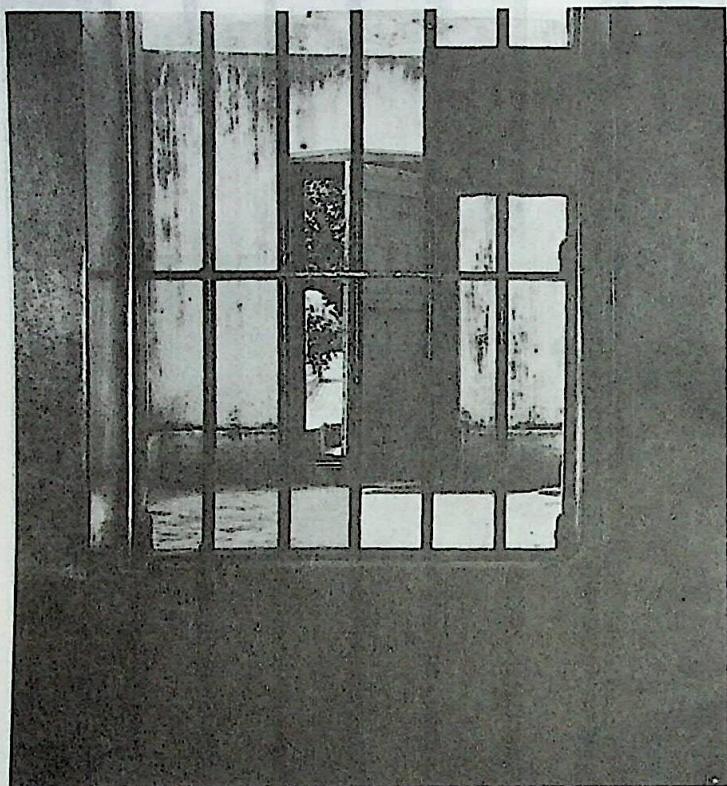
"...आंगन का दरवाजा खुला होने पर मेरे लिए
बाहर की खुली जगह देखना सम्भव होता था..."

कमरे पास-पास थे, इन्हें कहा जाता था ६ 'डिक्री'। डिक्री का अर्थ है विशेष दण्ड का कमरा, न्यायाधीश या जेल सुपरिंटेंडेंट के हुकुम से जिन्हें निर्जन कारावास का दण्ड मिलता था उन्हें ही इन छोटे-छोटे गह्वरों में रहना होता था। इन निर्जन कारावासों की भी श्रेणी होती है। जिन्हें विशेष सजा मिलती है उनके आंगन का दरवाजा बन्द रहता है; मनुष्य संसार से पूर्णतया वञ्चित हो जाते हैं, उनका जगत् से एकमात्र सम्पर्क रह जाता है सन्तरी की आंखों और दो समय खाना लानेवाले कैदी से। सी. आई. डी. की नजरों में हेमचन्द्र दास मुझसे भी ज्यादा आतंककारी थे, इसीलिए उनके लिए ऐसी व्यवस्था की गयी। इस सज़ा के ऊपर भी सज़ा है—हाथ-पैर में हथकड़ी और बेड़ी पहन निर्जन कारावास में रहना। यह चरम दण्ड केवल जेल की शान्ति भंग करनेवालों या मारपीट करनेवालों के लिए नहीं, बार-बार काम में गफ़लत करने से भी यह दण्ड मिलता है। निर्जन कारावास के मुकद्दमे के आसामी को दण्ड के रूप में ऐसा कष्ट देना नियम के विरुद्ध है परन्तु स्वदेशी या 'वन्देमातरम्'-कैदी नियम से बाहर हैं, पुलिस की इच्छा से उनके लिए भी सुव्यवस्था होती है।

हमारा वासस्थान तो ऐसा था लेकिन साज-सरंजाम में भी हमारे सहृदय कर्मचारियों ने आतिथ्य सत्कार में कोई त्रुटि नहीं की। एक थाली और एक कटोरा आंगन को सुशोभित करते थे। खूब अच्छी तरह मांजे जाने पर मेरा सर्वस्व थाली और कटोरा चांदी की तरह इस कदर चमकते कि प्राण जुड़ा जाते और उस निर्दोष किरणमयी उज्ज्वलता में 'स्वर्गजगत्' में विशुद्ध ब्रिटिश राजतन्त्र की उपमा पर राजभक्ति के निर्मल आनन्द का अनुभव करता था। दोषों में एक दोष था कि थाली भी उसे समझ कर आनन्द में इतनी उत्फुल्ल हो उठती थी कि अंगुली का जरा-सा जोर पड़ते ही वह घुमक्कड़ अरब-दरवेशों की तरह चक्कर काटने लगती, ऐसे में एक हाथ से खाना

और एक हाथ से थाली पकड़े रहने के सिवा कोई चारा न रहता। नहीं तो चक्कर काटते-काटते जेल का अतुलनीय मुट्ठी भर अन्न लेकर वह भाग जाने का उपक्रम करती। थाली की अपेक्षा कटोरा था और भी अधिक प्रिय और उपकारी। जड़ पदार्थों में मानों यह था ब्रिटिश सिविलियन। सिविलियनों में जैसे सब कार्यों में स्वभावजात निपुणता और योग्यता होती है, जज, शासनकर्ता, पुलिस, शुल्क-विभाग के कर्ता, म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष, शिक्षक, धर्मोपदेशक, जो चाहो वही, कहने भर से ही, बन सकते हैं—जैसे उनके लिए, एक शरीर में, एक ही साथ अनुसन्धाता, अभियोगकर्ता, पुलिस, विचारक और कभी-कभी वादी के परामर्शदाता का भी प्रीतिसम्मिलन सहज साध्य था, वैसा ही था मेरा प्यारा कटोरा भी। कटोरे की जात नहीं, विचार नहीं। कारागृह में उसी कटोरे से पानी ले शौच किया, उसी कटोरे से मुंह धोया, स्नान किया, कुछ देर बाद उसीमें खाना पड़ा, उसी कटोरे में दाल या तरकारी डाली गयी, उसी कटोरे से पानी पिया और कुल्ला किया। ऐसी सर्वकार्यक्षम मूल्यवान् वस्तु अंग्रेजों की जेल में ही मिलनी सम्भव है। कटोरा मेरे लिए ये सब सांसारिक उपकार कर योग-साधना में भी सहायक बना। घृणा-परित्याग कराने का ऐसा सहायक और उपदेशक कहां पाऊंगा? निर्जन कारावास की पहली अवधि के बाद जब हमें एक साथ रखा गया तब मेरे सिविलियन के अधिकारों का पृथकीकरण हुआ,—अधिकारियों ने शौच के लिए अन्य उपकरण जुटाया किन्तु महीने-भर में घृणा पर काबू पाने का बिना मांगा पाठ पढ़ लिया था। शौच की सारी व्यवस्था ही मानों इस संयम की शिक्षा को ध्यान में रखकर की गयी थी। पहले कहा है, निर्जन कारावास विशेष दण्ड में गिना जाता है और उस दण्ड का मूल सिद्धान्त है जितना सम्भव हो मनुष्य-संसर्ग और मुक्त आकाश-सेवन का वर्जन। बाहर शौच की व्यवस्था करने से तो

यह सिद्धान्त भंग होता अतः कोठरी में ही तारकोल पुती दो टोकरियां दी जाती थीं। सवेरे-शाम मेहतर साफ कर जाता, तीव्र आन्दोलन और मर्मस्पर्शी भाषण देने पर और समय भी सफाई हो जाती, किन्तु असमय पाखाना जाने से घण्टों दुर्गन्ध भोगकर प्रायश्चित्त करना पड़ता। निर्जन कारावास की दूसरी अवधि में इसमें थोड़ा-बहुत सुधार हुआ किन्तु सुधार होता है पुराने जमाने के मूलतत्त्वों को अक्षुण्ण रखते हुए शासन में सुधार। किं बहुना, इस छोटी-सी कोठरी में ऐसी व्यवस्था होने से हमेशा, विशेषकर खाने के समय और रात को, भारी असुविधा भोगनी पड़ती थी। जानता हूं, शयनागार के साथ पाखाना रखना प्रायः विलायती सभ्यता की विशेषता है किन्तु एक छोटे-से कमरे में शयनागार, भोजनालय और पाखाना—इसे कहते हैं too much of a good thing (भलाई की भी सीमा पार कर जाना)। हम ठहरे कु-अभ्यासग्रस्त भारतवासी, सभ्यता के इतने ऊंचे सोपान पर पहुंचना हमारे लिए कष्टकर है।

गृह-सामग्री में और भी चीजें थीं : एक नहाने की बाल्टी, पानी रखने को एक टीन की नलाकार बाल्टी और दो जेल के कम्बल। स्नान की बाल्टी आंगन में रखी रहती, वहीं नहाता था। पहले हमारे भाग्य में पानी का कष्ट नहीं था पर बाद में यह भी भोगना पड़ा। पहले पास के गोहालघर (गोशाला) के कैदी नहाते समय मेरी इच्छानुसार बाल्टी में पानी भर देते थे, इसीलिए नहाने का समय ही था जेल की तपस्या के बीच प्रतिदिन गृहस्थ की विलासवृत्ति और सुखप्रियता को तृप्त करने का अवसर। दूसरे आसामियों के भाग्य में इतना भी नहीं जुटा था; एक बाल्टी पानी से ही उन्हें शौच, बर्तन-मंजाई, स्नान सब करना होता था। विचाराधीन कैदी थे इसीलिए इतना-सा विलास भी मिला हुआ था, कैदियों को तो दो-चार कटोरे पानी में ही स्नान करना पड़ता था। अंग्रेज कहते हैं भगवत्-प्रेम व

शरीर की स्वच्छन्दता प्रायः समान और दुर्लभ सद्गुण हैं, जेलों में यह व्यवस्था इस प्रवाद की यथार्थता को सिद्ध करने के लिए है या अतिरिक्त स्नान के सुख से कैदियों के अनिच्छाजनित तपस्या के रस-भंग होने के भय से यह व्यवस्था प्रचलित की गयी है, यह निर्णय करना कठिन है। आसामी अधिकारियों की इस दया को काक-स्नान कह खिल्ली उड़ाते थे। मनुष्यमात्र ही है असन्तोषप्रिय। नहाने की व्यवस्था से पीने के पानी की व्यवस्था और भी निराली थी। गर्मी का मौसम, मेरें छोटे-से कमरे में हवा का प्रवेश लगभग निषिद्ध था किन्तु मई महीने की उग्र और प्रखर धूप बेरोक-टोक घुस आती थी। कमरा जलती भट्टी-सा हो उठता था। इस भट्टी में तपते हुए अदम्य जल-तृष्णा को कम करने का उपाय था वही टीन की बाल्टी का अर्ध-उष्ण जल। बार-बार वही पीता था, प्यास तो नहीं बुझती थी वरन् पसीना छूटता और कुछ देर में फिर से प्यास लग आती थी। पर हां, किसी-किसी के आंगन में मिट्टी की सुराही रखी हुई थी, वे अपने पूर्वजन्म में की तपस्या का स्मरण कर अपने को धन्य मानते। तब घोर पुरुषार्थवादी को भी भाग्य में विश्वास करने को बाध्य होना पड़ता था, किसी के भाग्य में ठण्डा पानी बदा था तो किसी के भाग्य में प्यास, सब था भाग्य का फेर। अधिकारीगण, किन्तु, पूर्ण पक्षपातरहित हो कलसी या बाल्टी वितरण करते थे। इस यदृच्छा-लाभ से मेरे सन्तुष्ट होने या न होने से भी मेरा जल-कष्ट जेल के सहृदय डॉक्टर बाबू को असह्य हो उठा। वे कलसी जुटाने में लगे किन्तु क्योंकि इस बन्दोबस्त में उनका हाथ नहीं था इसलिए बहुत दिन तक इसमें सफल नहीं हुए, अन्त में उनके ही कहने से मुख्य जमादार ने कहीं से कलसी का आविष्कार किया। उससे पहले ही तृष्णा के साथ अनेक दिन के घोर संग्राम से मैं पिपासा-मुक्त हो चला था। तिस पर इस तप्त कमरे में बिस्तर के नाम को थे दो जेल के

बने मोटे कम्बल। तकिया नदारद, एक कम्बल को नीचे बिछा लेता और दूसरे की तह करके तकिया बना सोता। जब गर्मी असह्य हो उठती और बिस्तर पर न रहा जाता तब मिट्टी में लोट लगा, बदन ठण्डा कर आराम पाता था। माता वसुन्धरा की शीतल गोद के स्पर्श का क्या सुख है यह तभी जाना। फिर भी, जेल में उस गोद का स्पर्श बहुत कोमल नहीं होता, उससे निद्रा के आगमन में बाधा आती अतः कम्बल की शरण लेनी पड़ती। जिस दिन वर्षा होती वह दिन बड़े आनन्द का दिन होता। इसमें भी एक असुविधा यह थी कि झड़ी-झञ्झा होते ही धूल, पत्ते और तिनकों से भरे प्रभञ्जन के ताण्डव नृत्य के बाद मेरे पिंजरे के अन्दर बाढ़-सी आ जाती। ऐसे में रात को भीगा कम्बल ले कमरे के एक कोने में दुबकने के सिवा कोई चारा न रहता। प्रकृति की इस विशिष्ट लीला के समाप्त होने पर भी जलप्लावित धरती जबतक सूख नहीं जाती थी तबतक निद्रादेवी की आशा छोड़ विचारों का दामन पकड़ना पड़ता था। एकमात्र सूखी जगह थी शौच के आसपास किन्तु वहां कम्बल बिछाने की प्रवृत्ति न होती। इन सब असुविधाओं के होते हुए भी झड़ी-झञ्झा के दिन भीतर खूब हवा आती और कमरे की जलती भट्टी का ताप दूर हो जाता इसलिए झड़ी-झञ्झा का सादर स्वागत करता।

अलीपुर के गवर्नमेंट होटल का जो वर्णन मैंने किया है एवं आगे और भी करूंगा वह निजी कष्ट-भोग की विज्ञप्ति के लिए नहीं वरन् सुसभ्य ब्रिटिश राज्य में विचाराधीन कैदियों के लिए कितनी अद्‌भुत व्यवस्था थी, निर्दोषों को दीर्घकालव्यापी कितनी यन्त्रणा भोगनी पड़ सकती है, यह बतलाने के लिए ही है यह वर्णन। कष्टों के जो कारण दिखलाये हैं, वे तो थे ही किन्तु भगवान् की दयादृष्टि थी इसलिए थोड़े दिनों तक ही कष्ट अनुभव किया, उसके बाद तो—किस उपाय से वह बाद में बताऊंगा—मन उस दुःख से अतीत हो

कष्ट अनुभव करने में असमर्थ हो गया था। इसीलिए मन में जेल की स्मृति जगने पर क्रोध या दुःख नहीं, हंसी ही आती है। पहले-पहल जब जेल की विचित्र पोशाक पहन अपने पिंजरे में घुसकर रहने का बन्दोबस्त देखा था तब यही भाव मन में उदित हुआ था। मन-ही-मन हंस रहा था। अंग्रेज जाति का इतिहास और आधुनिक आचरण का निरीक्षण कर बहुत पहले ही मैंने उनके विचित्र और रहस्यमय चरित्र को समझ लिया था, इसीलिए अपने प्रति उनका ऐसा व्यवहार देखकर भी जरा भी आश्चर्यान्वित या दुःखी नहीं हुआ। साधारण दृष्टि से हम लोगों के साथ उनका ऐसा व्यवहार अतिशय अनुदार व निन्दनीय था। हम सब थे कुलीन घरानों के, बहुत-से थे जमींदारों के बेटे, कितने ही वंश, विद्या, गुण और चरित्र में थे इंग्लैण्ड के शीर्षस्थानीय व्यक्तियों के समकक्ष! हम जिस अपराध में पकड़े गये थे वह भी सामान्य खून, चोरी, डकैती नहीं था, था देश के लिए विदेशी सरकार के विरुद्ध युद्ध-चेष्टा या समरोद्योग का षड्यंत्र। तिसपर कइयों को दोषी ठहराने में प्रमाण का नितान्त अभाव था; पुलिस का सन्देह ही था उनके पकड़े जाने का एकमात्र कारण। ऐसे स्थान में सामान्य चोर-डकैतों की तरह रखना—चोर-डकैत ही क्यों, पशुओं की तरह पिंजरे में रख, पशुओं का अखाद्य आहार खिलाना, जलकष्ट, क्षुत्पिपासा, धूप, वर्षा व शीत सहन कराना—इससे ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश जाति की गौरव-वृद्धि नहीं होती। यह है किन्तु उनका जातीय चरित्रगत दोष। अंग्रेजों में क्षत्रियोचित गुण होते हुए भी शत्रु या विरुद्धाचरणकारी के साथ व्यवहार करते समय वे हैं सोलह आने बनिये। मेरे मन में तब विरक्ति की भावना ने स्थान नहीं पाया बल्कि मुझमें और देश के साधारण अशिक्षित लोगों में कुछ भेद नहीं रखा गया यह देखकर कुछ आनन्दित हुआ, और फिर इस व्यवस्था ने तो मातृभक्ति के प्रेम-भाव में आहुति का काम किया।

मैंने इसे योग-शिक्षा और द्वन्द्व-जय का अपूर्व उपकरण और अनुकूल अवस्था माना, तिसपर मैं था चरमपन्थी दल का जिसके मत में प्रजातन्त्र एवं धनी-दरिद्र का साम्य राष्ट्रीय भाव का एक प्रधान अंग है। याद हो आया—इस मत को कार्यान्वित करना अपना कर्तव्य समझ सूरत जाते समय सभी ने एक साथ तीसरे दर्जे में यात्रा की थी, कैम्प में नेतागण अपना-अपना अलग प्रबन्ध न कर सबके साथ एक भाव से, एक ही कमरे में सोते। धनी, दरिद्र, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, बंगाली, मराठी, पंजाबी, गुजराती—सब दिव्य भ्रातृभाव से एक साथ रहते, सोते, खाते। जमीन पर सोना, दाल-भात, दही ही खाना, सब चीजों में था स्वदेशी का बोलबाला। कलकत्ता और बम्बई के विदेश से लौटे हुए लोग और मद्रास के तिलकधारी ब्राह्मण सब एक साथ मिल-जुल गये थे। इस अलीपुर जेल में रहते समय अपने देश के कैदी, अपने देश के किसान, लुहार, कुम्हार, डोम-बाग्दियों के समान आहार, समान रहन-सहन, समान कष्ट, समान मान-मर्यादा पाकर मैंने जाना कि सर्वशरीरवासी नारायण ने इस साम्यवाद, इस एकता, इस देशव्यापी भ्रातृभाव से सहमत हो मानों मेरे जीवन-व्रत पर अपनी मुहर लगा दी हो। जिस दिन जन्मभूमि-रूपिणी जगज्जननी के पवित्र मण्डप में सारा देश भ्रातृभाव में एक प्राण हो जगत् के सामने उन्नतमस्तक हो खड़ा होगा, सहवासी आसामी और कैदियों के प्रेमपूर्ण आचरण एवं सरकार के इस साम्यभाव में, इस कारावास में उस शुभ दिन का हृदय में पूर्वाभास पा कितनी ही बार हर्षित व पुलकित हो उठता था। अभी उसी दिन पूना के 'Indian Social Reformer' ने मेरी एक सहज बोधगम्य उक्ति पर व्यंग्य कसते हुए कहा था, "जेल में तो भगवत्-सान्निध्य की बड़ी बाढ़-सी आ गयी दीखती है।" हाय रे मान-सम्मान के अन्वेषी, अल्प विद्या से, अल्प सद्गुण से गर्वित मनुष्य के अहंकार और क्षुद्रता! जेल में, कुटीर में,

आश्रम में, दुःखी के हृदय में भगवान् प्रकट नहीं होंगे तो क्या धनी के विलास-भवन में, सुखान्वेषी स्वार्थान्ध संसारी की सुख-शय्या पर होंगे? भगवान् विद्या, सम्मान, लोकमान्यता, लोकप्रशंसा, बाह्य स्वच्छन्दता व सभ्यता नहीं देखते। वे दुःखी के सामने ही दयामयी मां का रूप धरते हैं। जो मानवमात्र में, जाति में, स्वदेश में, दुःखी-गरीब, पतित-पापी में नारायण को देख उनकी सेवा में जीवन समर्पित करते हैं उन्हीं के हृदय में आ बसते हैं नारायण और उत्थानोद्यत पतित जाति में, देश-सेवक की निर्जन कारा में ही सम्भव है भगवत्सान्निध्य की बाढ़।

कम्बल, थाली-कटोरी का प्रबन्ध कर जेलर के चले जाने पर कम्बल पर बैठ मैं जेल का दृश्य देखने लगा। लालबाजार की हवालात की अपेक्षा यह निर्जन कारावास अधिक अच्छा लगा। वहां उस विशाल कमरे की निर्जनता मानों अपनी विशाल काया को विस्तारित करने का अवकाश पा निर्जनता को और भी गहन करे दे रही थी। यहां छोटे-से कमरे की दीवारें मानों बन्धु-रूप में पास आ, ब्रह्ममय हो आलिंगन में भर लेने को तैयार थीं। वहां दोतल्ले के कमरे की ऊंची-ऊंची खिड़कियों से बाहर का आकाश भी नहीं दीखता था, इस संसार में पेड़-पत्ते, मनुष्य, पशु-पक्षी, घर-द्वार भी कुछ है, बहुत बार इसकी कल्पना करना भी कठिन हो जाता था। यहां आंगन का दरवाजा खुला होने पर सरियों के पास बैठने से बाहर जेल की खुली जगह और कैदियों का आना-जाना देखा जा सकता है। आंगन की दीवार से सटा वृक्ष था, उसकी नयनरञ्जक नीलिमा से प्राण जुड़ा जाते। छह डिक्री के छह कमरों के सामने जो सन्तरी घूमता रहता उसका चेहरा और पदचाप बहुत बार परिचित बन्धु के चलने-फिरने की तरह प्रिय लगता। कोठरी के पार्श्ववर्ती गोहालघर के कैदी कोठरी के

सामने से गौएं चराने ले जाया करते। गौ और गोपाल थे प्रतिदिन के प्रिय दृश्य। अलीपुर के निर्जन कारावास में अपूर्व प्रेम की शिक्षा पायी। यहां आने से पहले मनुष्यों के साथ मेरा व्यक्तिगत प्रेम अतिशय छोटे घेरे में घिरा था और पशु-पक्षियों पर रुद्ध प्रेम-स्रोत तो बहता ही नहीं था। याद आता है, रवि बाबू की एक कविता में भैंस के प्रति एक ग्राम्य बालक का गभीर प्रेम बहुत सुन्दर ढंग से वर्णित हुआ है, पहली बार पढ़ने पर वह जरा भी हृदयंगम नहीं हुई थी, भाव-वर्णन में अतिशयोक्ति और अस्वाभाविकता का दोष देखा था। अब पढ़ने पर उसे दूसरी ही दृष्टि से देखा। अलीपुर में रहकर समझ सका कि सब तरह के जीवों पर मनुष्य के प्राणों में कितना गभीर स्नेह स्थान पा सकता है, गौ, पक्षी, चींटी तक को देख कितने तीव्र आनन्द के स्फुरण में मनुष्य का प्राण अस्थिर हो सकता है।

कारावास का पहला दिन शान्ति से कट गया। सभी कुछ था नया, इससे मन में स्फूर्ति जगी। लालबाजार की हवालात से तुलना करने पर इस अवस्था में भी प्रसन्नता हुई और भगवान् पर निर्भर था इसलिए यहां निर्जनता भी भारी नहीं पड़ी। जेल के खाने की अद्‌भुत सूरत देखकर भी इस भाव में कोई व्याघात नहीं पड़ा। मोटा भात, उसमें भी भूसी, कंकड़, कीड़ा, बाल, गन्दगी आदि कितने तरह के मसालों से पूर्ण—स्वादहीन दाल में जल का अंश ही अधिक, तरकारी में निरा घास-पात का साग। मनुष्य का खाना इतना स्वादहीन और निस्सार हो सकता है यह पहले नहीं जानता था। साग की यह विषण्ण गाढ़ी कृष्ण मूर्ति देखकर ही डर गया, दो ही ग्रास खा उसे भक्तिपूर्ण नमस्कार कर एक ओर सरका दिया। सब कैदियों के भाग्य में एक ही तरकारी बदी थी और एक बार कोई तरकारी शुरू हो जाये तो अनन्त काल तक वही चलती थी। उस समय साग का राज्य था। दिन बीते, पखवारे बीते, माह बीते किन्तु दोनों समय वही साग, वही

दाल, वही भात। चीजें तो क्या बदलनी थीं, रूप में भी कतई परिवर्तन नहीं होता था, उसका वही नित्य, सनातन, अनाद्यनन्त, अपरिणामातीत अद्वितीय रूप! दो दिन में ही कैदी में इस नश्वर माया-जगत् के स्थायित्व पर विश्वास जनमने लगेगा। इसमें भी अन्य कैदियों की अपेक्षा मैं भाग्यशाली रहा, यह भी डॉक्टर बाबू की दया से। उन्होंने हस्पताल से मेरे लिए दूध की व्यवस्था की थी, इससे कुछ दिन के लिए साग-दर्शन से मुक्ति मिली।

उस रात जल्दी ही सो गया; किन्तु निश्चिन्त निद्रा निर्जन कारावास का नियम नहीं, उससे कैदियों की सुखप्रियता जग सकती है। इसीलिए नियम है कि जितनी बार पहरा बदले उतनी बार कैदी को हांक मारकर उठाया जाता है और हुंकारा न भरने तक छोड़ते नहीं। जो-जो छह डिक्री का पहरा देते थे उनमें से बहुत-से इस कर्तव्य-पालन से विमुख थे,—सिपाहियों में प्रायः ही कठोर कर्तव्य-ज्ञान की अपेक्षा दया और सहानुभूति अधिक थी, विशेषतः हिन्दुस्तानियों के स्वभाव में। किन्तु कुछ लोगों ने नहीं बख़्शा। वे हमें इस तरह जगा यह कुशल संवाद पूछते : "बाबू, ठीक हैं तो?" यह असमय का हंसी-मजाक सदा नहीं सुहाता पर समझ गया था कि जो ऐसा करते हैं वे सरलभाव से नियमवश ही हमें उठाते हैं। कई दिन विरक्त होते हुए भी इसे सह गया। अन्ततः निद्रा की रक्षा के लिए धमकी देनी पड़ी। दो-चार बार धमकाने के बाद देखा कि रात को कुशल-क्षेम पूछने की प्रथा अपने-आप ही उठ गयी।

अगले दिन सवेरे सवा चार बजे जेल की घण्टी बजी। कैदियों को जगाने के लिए यह पहली घण्टी थी। कुछ मिनट बाद दूसरी बजती, इसके बाद कैदी पंक्तिबद्ध हो बाहर आ हाथ-मुंह धो, 'लप्सी' खा दिनभर की मशक्कत में लग जाते। इतनी घण्टियों के बजते हुए सोना असम्भव जान मैं भी उठ जाता। पांच बजे लौह-द्वार खोला

जाता, मैं हाथ-मुंह धो फिर से कमरे में आ बैठा। कुछ देर बाद मेरे दरवाजे पर लप्सी हाज़िर हुई किन्तु उस दिन उसे खाया नहीं, केवल चाक्षुष परिचय हुआ। इसके कुछ दिन बाद पहली बार इस परमान्न का भोग लगाया। लप्सी अर्थात मांडसहित उबला भात, यही थी कैदियों की छोटी हाज़िरी। लप्सी की त्रिमूर्ति या तीन अवस्थाएं हैं। पहले दिन लप्सी का प्राज्ञभाव, अमिश्रित मूलपदार्थ, शुद्ध शिव शुभ्र-मूर्ति। दूसरे दिन लप्सी का हिरण्यगर्भ रूप, दाल के साथ सीजा हुआ खिचड़ी के नाम से अभिहित, पीतवर्ण, नाना धर्मसंकुल। तीसरे दिन थोड़े-से गुड़ में मिश्रित लप्सी की विराट् मूर्ति, धूसर वर्ण, कुछ परिमाण में मनुष्य के व्यवहार योग्य। प्राज्ञ और हिरण्यगर्भ का सेवन साधारण मर्त्य मनुष्य के बूते से बाहर मान मैंने उसे त्याग दिया था। कभी-कभार विराट् के दो ग्रास उदरस्थ कर ब्रिटिश राज्य के नाना सद्‌गुण और पाश्चात्य सभ्यता के उच्च दर्जे के humanitarianism (लोकहितवाद) के बारे में सोच-सोच कर आनन्दमग्न होता रहता था। कहना चाहिये कि लप्सी ही था बंगाली कैदियों का एकमात्र पुष्टिकर आहार, बाकी सब था सारशून्य। वह होने से भी क्या होगा? उसका जैसा स्वाद था, वह केवल भूख से सताये जाने पर ही खाया जा सकता है, वह भी जोर-जबर्दस्ती, मन को बहुत समझा-बुझाकर।

उस दिन साढ़े ग्यारह बजे स्नान किया। घर से जो पहनकर आया था, पहले चार-पांच दिन वही पहने रहना पड़ा। नहाते समय गोहालघर के जो वृद्ध कैदी वॉर्डर मेरी देखरेख के लिए नियुक्त हुए थे उन्होंने कहीं से डेढ़ हाथ चौड़ा एंडी का कपड़ा जुटा दिया था, अपने एकमात्र कपड़े सूखने तक वही पहने बैठा रहता। मुझे कपड़े धोने और बर्तन मांजने नहीं पड़ते थे, गोहालघर का एक कैदी यह कर देता था। ग्यारह बजे खाना। कमरे की छितनी के सान्निध्य से बचने के लिए ग्रीष्म की धूप सहते हुए प्रायः ही आंगन में खाया

करता। सन्तरी भी इसमें बाधा न देते। शाम का खाना होता पांच-साढ़े पांच बजे। उसके बाद लौह-द्वार खुलना निषिद्ध था। सात बजे शाम का घण्टा बजता। मुख्य जमादार कैदी वॉर्डरों को इकट्ठा कर उच्च स्वर में नाम पढ़ते जाते थे, उसके बाद सब अपनी-अपनी जगह चले जाते। श्रान्त कैदी निद्रा की शरण ले जेल के इस एकमात्र सुख का अनुभव करते। इस समय दुर्बलचेता अपने दुर्भाग्य या भावी जेल-दुःख की चिन्ता कर रोया करते। भगवद्-भक्त नीरव रात्रि में ईश्वर का सान्निध्य अनुभव कर प्रार्थना या ध्यान में आनन्द लूटते। रात को इन अभागे, पतित, समाज-पीड़ित तीन सहस्र ईश्वरसृष्ट प्राणियों का यह अलीपुर जेल, प्रकाण्ड यन्त्रणा-गृह विशाल नीरवता में डूब जाता।

जो मेरे साथ एक ही अभियोग के अभियुक्त थे उनसे जेल में मिलना-जुलना नहीं के बराबर था। उन्हें कहीं और रखा गया था। छह डिक्री के पिछली तरफ छोटी-छोटी कोठरियों की दो पंक्तियां थीं, इन दोनों पंक्तियों में कुल मिलाकर थीं ४४ कोठरियां, इसीलिए ये चवालीस डिक्री कहलाती थीं। इसी डिक्री की एक पंक्ति में अधिकतर आसामियों का वासस्थान निर्दिष्ट था। कोठरी में बन्द रहते हुए भी वे निर्जन कारावास नहीं भोग रहे थे, क्योंकि एक-एक कमरे में तीन-तीन थे। जेल के दूसरे भाग में एक और डिक्री थी, उसमें कुछ-एक बड़े कमरे थे; एक-एक कमरे में बारह आदमी तक रह सकते थे। जिसके भाग्य में यह डिक्री पड़ती वे अधिक सुख से रहते। इस डिक्री में बहुत-से एक ही कमरे में बन्द थे, वे रात-दिन बातचीत करने का मौका और मनुष्य-सम्पर्क पा सुख से समय बिताते। तो भी, उनमें से एक इस सुख से वञ्चित थे। वे थे हेमचन्द्र दास। न जाने क्यों अधिकारियों को इनसे विशेष भय या इन पर क्रोध था,

बारीन कुमार घोष
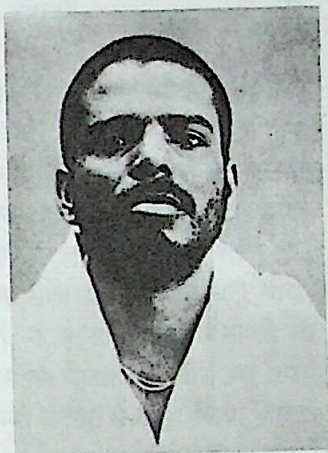
उपेन्द्रनाथ बैनर्जी
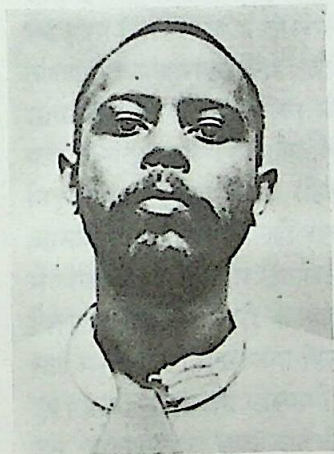
उल्लासकर दत्त
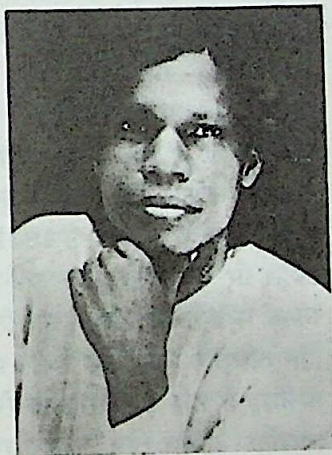
हेमचन्द्र दास

इतने लोगों में से निर्जन कारावास की यन्त्रणा भोगने के लिए अधिकारियों ने उन्हें ही चुना। हेमचन्द्र की निजी धारणा थी कि पुलिस भरपूर चेष्टा करने पर भी उनसे दोष स्वीकार न करा सकी इसीलिए था उनपर यह क्रोध। उन्हें इस डिक्री के एक बहुत ही छोटे-से कमरे में बन्द करके बाहर का दरवाजा तक बन्द रखा जाता था। कह चुका हूं कि यही थी इस विशेष सजा की चरमावस्था। बीच-बीच में पुलिस नाना जाति, नाना वर्ण, नाना आकृतियों के साक्षी ला Identification (शिनाख़्त) के प्रहसन का नाटक कराती। उस समय हम सबको ऑफिस के आगे एक लम्बी कतार में खड़ा किया जाता। जेल के अधिकारी हमारे साथ जेल के दूसरे-दूसरे मुकद्दमे के आसामियों को मिला उन्हें दिखाते थे। किन्तु यह था केवल नाम के लिए। इन आसामियों में शिक्षित और सज्जन तो एक भी नहीं था, जब उनके साथ एक ही पंक्ति में खड़े होते तो दोनों तरह के आसामियों में इतना भेद होता कि एक तरफ तो बम-केस के अभियुक्त लड़कों का तेजस्वी, तीक्ष्णबुद्धि-प्रकाशक चेहरे का भाव और गठन और दूसरी तरफ़ साधारण कैदियों की मलिन पोशाक और निस्तेज मुख को देख जो यह न बता पाये कि कौन किस श्रेणी का है उन्हें मूर्ख तो क्या निकृष्ट मनुष्यबुद्धि से भी रहित कहना होगा। यह शिनाख़्त की परेड आसामियों को अप्रिय नहीं लगती थी। इससे जेल के एकरस जीवन में वैचित्र्य आता और आपस में दो-एक बात कहने का भी मौका मिल जाता। गिरफ्तारी के बाद पहली बार ऐसी एक परेड में अपने भाई बारीन्द्र को देख पाया किन्तु तब उसके साथ कोई बातचीत नहीं हुई। प्रायः नरेन्द्रनाथ गोस्वामी ही मेरी बगल में खड़े होते थे इसलिए उस समय उनके साथ बातचीत जरा ज्यादा हुई। गोसाईं अतिशय सुन्दर, लम्बे, गोरे, बलिष्ठ, पुष्टकाय थे किन्तु उनकी आंखों से कुवृत्ति झलकती थी, बातों में भी बुद्धिमत्ता का कोई लक्षण नहीं

मिला। इस बारे में उनमें और अन्य युवकों में विशेष अन्तर था। उन युवकों के चेहरे में प्रायः ही उच्च और पवित्र भाव अधिक और बातचीत में प्रखरबुद्धि, ज्ञानलिप्सा और महत् स्वार्थहीन आकांक्षा की अभिव्यक्ति पाता। गोसाईं की बात मूर्खतापूर्ण और लघुचेता मनुष्य की बात की तरह होते हुए भी तेज और साहस से पूर्ण थी। उन्हें उस समय पूरा विश्वास था कि वे बरी हो जायेंगे। वे कहा करते, "मेरे पिता मुकद्दमे में पारंगत हैं, पुलिस उन्हें कभी भी नहीं हरा सकेगी। मेरे इज़हार भी मेरे विरुद्ध नहीं जायेंगे, क्योंकि यह प्रमाणित हो जायेगा कि पुलिस ने मुझे शारीरिक यन्त्रणा देकर मेरे इज़हार लिये हैं।" मैंने पूछा, "तुम तो पुलिस के हाथों में थे। साक्षी कहां हैं?" अम्लानवदन गोसाईं बोले, "मेरे पिता ने सैकड़ों मुकद्दमे लड़े हैं, वे अच्छी तरह सब समझते हैं। साक्षी का अभाव नहीं होगा।" ऐसे लोग ही बनते हैं approver—मुखबिर।

अबतक आसामियों की अनर्थक असुविधा और नाना कष्टों की बात कही है किन्तु यह भी कहना चाहिये कि सभी कुछ था जेल की प्रणाली का दोष; जेल के ये सब कष्ट किसी की व्यक्तिगत निष्ठुरता या मनुष्योचित गुण के अभाव से नहीं मिले। अलीपुर जेल के तो सभी अधिकारी अतिशय भद्र, दयावान् और न्यायपरायण थे। यदि किसी जेल में कैदी की यन्त्रणा कम हुई है, यूरोपीय जेल-प्रणाली की अमानुषिक बर्बरता दया और न्यायपरायणता से घटी है तो वह बुराई से भलाई हुई है अलीपुर जेल में और इमर्सन साहब के राजत्व में। इस भलाई के दो प्रधान कारण थे जेल के अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट इमर्सन साहब और हस्पताल के असिस्टेंट बंगाली डॉक्टर वैद्यनाथ चटर्जी के असाधारण गुण। इनमें से एक थे यूरोप के लुप्तप्राय क्रिश्चियन आदर्श के अवतार और दूसरे हिन्दूधर्म के सारमर्म दया और परोपकार की

जीवन्त मूर्ति। इमर्सन साहब जैसे अंग्रेज इस देश में कहां आते हैं, विलायत में भी कम ही मिलते हैं। एक क्रिश्चियन सज्जन में जो गुण होने चाहियें वे सब उनमें एक साथ अवतीर्ण हुए थे। वे थे शान्तिप्रिय, विचारशील, दया-दाक्षिण्य में अतुलनीय, न्यायवान्, भद्र व्यवहार को छोड़ अधम के प्रति भी अभद्रता दिखलाने में स्वभाव से अक्षम, सरल, अकपट, संयमी। दोष यही था कि कर्मकुशलता और उद्यम की कमी थी, जेलर पर सारा कार्यभार छोड़ वे स्वयं निश्चेष्ट रहते। मेरा ख्याल है कि इससे कोई बड़ी भारी क्षति नहीं हुई। जेलर योगेन्द्र बाबू दक्ष और योग्य पुरुष थे, बहुमूत्र रोग से अतिशय पीड़ित होने पर भी अपने-आप सब काम-काज देखते और साहब का स्वभाव पहचानते थे इसलिए जेल में न्याय-निष्ठा और क्रूरता के अभाव की रक्षा करते। किन्तु वे इमर्सन साहब की तरह महात्मा नहीं थे, थे मात्र सामान्य बंगाली सरकारी नौकर, साहब को खुश करना जानते थे, दक्षता और कर्तव्यबुद्धि के साथ काम करते, स्वाभाविक भद्रता और शान्तभाव से लोगों के साथ व्यवहार करते, इसके अतिरिक्त और कोई विशेष गुण उनमें नहीं देखा। नौकरी से प्रबल मोह था। विशेषकर तब मई का महीना था, पेंशन पाने का समय पास ही आ गया था, जनवरी में पेंशन ले दीर्घ परिश्रमोपार्जित विश्राम का सुख लूटने की आशा बंधी थी। अलीपुर बम-केस के आसामियों का आविर्भाव देख हमारे जेलर महाशय अत्यन्त भीत और चिन्तित हो उठे थे। ये सब उग्र-स्वभाव तेजस्वी बंगाली लड़के किस दिन क्या काण्ड कर बैठें इसी चिन्ता से वे उद्विग्न रहते। वे कहा करते, ताड़-गाछ पर केवल डेढ़ इंच चढ़ना बाकी है। किन्तु उस डेढ़ इंच का केवल आधा ही वे चढ़ पाये थे। अगस्त के अन्त में बोकानन साहब जेल का पर्यवेक्षण कर सन्तुष्ट हुए। जेलर महाशय आनन्दित हो बोले, "मेरी कार्य-अवधि में साहब का यह अन्तिम आगमन था, अब पेंशन का डर

नहीं।" हाय रे मनुष्य की अन्धता! कवि ने ठीक ही कहा है, विधाता ने दुःखी मनुष्य के दो परम उपकार किये हैं। पहला, भविष्य को निबिड़ अन्धकार से ढक रखा है, दूसरा, उसका एकमात्र अवलम्बन और सान्त्वना-स्वरूप अंधी आशा उसे दी है। उनके कहने के चार-पांच दिन बाद ही नरेन गोसाईं कानाई के हाथों मारे गये, बोकानन का बार-बार जेल में आना शुरू हुआ। फलस्वरूप योगेन्द्र बाबू की असमय ही नौकरी छूट गयी और शोक और रोग के मिलित आक्रमण से देह भी छूट गयी। ऐसे कर्मचारी पर सम्पूर्ण भार न छोड़ इमर्सन साहब स्वयं यदि सब कार्य देखते तो उनके राज में अलीपुर जेल के अधिक सुधार और उन्नति की सम्भावना थी। वे जितना देखते उसे सुसम्पन्न भी करते, उनके चरित्रगत गुण से ही जेल नरक न बन मनुष्य को कठोर दण्ड देने का स्थान-भर बनकर रह गया था। उनकी बदली हो जाने पर भी उनकी साधुता का फल पूरी तरह मिट नहीं गया, अबतक भी परवर्ती कर्मचारी उनकी साधुता दस आना बचाये रखने को बाध्य हैं।

जैसे जेल के अन्यान्य विभागों में बंगाली योगेन बाबू कर्ता-धर्ता थे वैसे ही हस्पताल के सर्वेसर्वा थे बंगाली डॉक्टर वैद्यनाथ बाबू। उनके उच्च अधिकारी डॉ. डैली, इमर्सन साहब की तरह दयावान् न होते हुए भी अत्यन्त सज्जन और विचक्षण व्यक्ति थे। वे लड़कों का शान्त आचरण, प्रफुल्लता और बाध्यता देख भूरि-भूरि प्रशंसा करते और अल्पवयस्कों के साथ हंसी-मजाक और दूसरे आसामियों के साथ राजनीति, धर्म और दर्शनविषयक चर्चा करते। डॉक्टर साहब थे आयरिश वंशजात, उस उदार और भावप्रवण जाति के अनेक गुण उनमें साकार हुए थे। उनमें क्रूरता रत्ती-भर भी नहीं थी, कभी-कभी क्रोध के वशीभूत हो कोई कड़ी बात या कठोर आचरण कर बैठते

लेकिन प्रायः ही उपकार करना उन्हें प्रिय था। वे जेल के कैदियों की चालाकी और कृत्रिम रोगों को देखने के अभ्यस्त थे; किन्तु ऐसा भी होता कि असली रोगी की भी कृत्रिमता के सन्देह में उपेक्षा कर देते थे, तो भी, सच्ची बीमारी का पता लगने पर बहुत ही यत्न से और दयापूर्वक रोगी की व्यवस्था करते। मुझे एक बार हल्का बुखार आया। उस समय थी वर्षाऋतु। अनेक वातायनयुक्त विशाल दालान में जलसिक्त मुक्त पवन अठखेलियां करता था, फिर भी मैं हस्पताल जाना या दवा खाना नहीं चाहता था। रोग और चिकित्सा के सम्बन्ध में मेरे विचार बदल गये थे, औषधि-सेवन में अब ज्यादा आस्था नहीं रह गयी थी, मुझे विश्वास था कि रोग कठिन न हो तो प्रकृति की साधारण क्रिया से ही स्वास्थ्यलाभ होगा। बरसाती हवा के स्पर्श से जो अनिष्ट सम्भव है उसका योगबल से दमन कर योगशिक्षागत सारी क्रियाओं का याथार्थ्य और साफल्य अपनी तर्कबुद्धि के सामने प्रतिपादन करने की इच्छा थी। किन्तु डॉक्टर साहब मेरे लिए महाचिन्तित थे, बड़े आग्रह के साथ उन्होंने मुझे हस्पताल जाने की आवश्यकता समझायी। हस्पताल जाने पर जितना हो सका उन्होंने घर की तरह रखने-खाने की व्यवस्था कर मुझे सौजन्य से रखा। वर्षा में जेल-वार्ड में रहने से मेरा स्वास्थ्य खराब न हो इस कारण वे मुझे ज्यादा दिन यहां सुख से रखना चाहते थे। किन्तु मैं जबरदस्ती वार्ड में लौट आया, हस्पताल में और अधिक रहने को सहमत नहीं हुआ। सब पर उनका समान अनुग्रह नहीं था। खास कर जो पुष्टशरीर और बलवान् थे उन्हें बीमारी होते हुए भी हस्पताल में रखने से डरते थे। उनकी यह भ्रान्त धारणा थी कि यदि जेल में कोई भी काण्ड घटता है तो वह इन सबल और चञ्चल लड़कों द्वारा होगा। अन्ततः ठीक इसका विपरीत फल हुआ, हस्पताल में जो काण्ड घटा वह घटा व्याधिग्रस्त, विशीर्ण, शुष्ककाय सत्येन्द्रनाथ वसु और रोग-क्लिष्ट धीरप्रकृति, अल्प-भाषी

कानाईलाल द्वारा। डॉक्टर डैली में ये सब गुण होते हुए भी वैद्यनाथ बाबू ही थे उनके अधिकांश सत्कार्यों के प्रवर्तक और प्रेरणादायक। सचमुच वैद्यनाथ बाबू के समान हृदयवान् मनुष्य मैंने न पहले कभी देखा और न बाद में ही दीखने की आशा है, उन्होंने मानों दया और उपकार करने के लिए ही जन्म लिया था। किसी भी दुःखगाथा से अवगत होना और उसे हल्का करने को तत्काल दौड़ना ही जैसे उनके चरित्र का स्वाभाविक कारण और अवश्यम्भावी कार्य बन गया था। वे इस यन्त्रणापूर्ण दुःखालय में मानों नरक के प्राणियों को स्वर्ग का सयत्न-सञ्चित नन्दनवारि वितरण करते थे। किसी भी अभाव, अन्याय या अनर्थक कष्टमोचन का श्रेष्ठ उपाय था उसे डॉक्टर बाबू के कानों तक पहुंचा देना। उसे दूर करना यदि उनके बस का होता तो वैसी व्यवस्था करने से नहीं चूकते थे। वैद्यनाथ बाबू हृदय में गभीर देशभक्ति संजोये थे लेकिन सरकारी नौकर होने के कारण प्राणों की उस भावना को चरितार्थ करने में अक्षम थे। उनका एकमात्र दोष था जरूरत से ज्यादा सहानुभूति। किन्तु वह भाव जेल के अधिकारी के लिए दोष होते हुए भी उच्च नीति के अनुसार मनुष्यत्व का चरम विकास और भगवान् का प्रियतम गुण कहलाता है। उनके लिए साधारण कैदियों और "वन्दे मातरम्" के कैदियों में कोई भेद नहीं था; पीड़ित देखते ही सभी को सयत्न हस्पताल में रखते और पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्यलाभ हुए बिना छोड़ना नहीं चाहते थे। यह दोष ही था उनके बरख़ास्त किये जाने का असली कारण। गोसाईं की हत्या के बाद अधिकारियों ने उनके इस आचरण पर सन्देह कर उन्हें अन्यायपूर्वक कर्मच्युत किया।

इन सब अधिकारियों की दया और मनुष्योचित स्वभाव का वर्णन करने का विशेष अभिप्राय है। जेल में हमारे लिए जो व्यवस्था की गयी थी, पहले उसकी आलोचना करने को बाध्य हुआ था और

उसके बाद भी ब्रिटिश जेल-प्रणाली की अमानुषिक निष्ठुरता सिद्ध करने की चेष्टा करूंगा। बाद में कोई भी पाठक इस निष्ठुरता को कर्मचारियों के चरित्र का कुफल न मान ले इसीलिए किया है मुख्य कर्मचारियों के गुणों का बखान। कारावास की प्रथम अवस्था के विवरण में उनके इन सब गुणों के और भी प्रमाण मिलेंगे।

निर्जन कारावास में पहले दिन की मानसिक अवस्था का वर्णन कर चुका हूं। इस निर्जन कारावास में समय बिताने के लिए पुस्तक या दूसरी कोई वस्तु के बिना कुछ दिन रहना पड़ा था। बाद में इमर्सन साहब मुझे घर से धोती, कुर्ता और पढ़ने को किताबें मंगवाने की अनुमति दे गये। मैंने कर्मचारियों से कलम, दवात और चिट्ठी के लिए जेल के छपे कागज मंगवा अपने पूजनीय मौसा, 'संजीवनी' के सुप्रसिद्ध सम्पादक को धोती, कुर्ता और पढ़ने की किताबों में गीता और उपनिषद् भेजने का अनुरोध किया। इन दो पुस्तकों को मुझ तक पहुंचने में दो-चार दिन लगे। तब तक निर्जन कारावास का महत्त्व समझने का यथेष्ट अवसर मिला। यह भी जाना कि ऐसे कारावास में दृढ़ और सुप्रतिष्ठित बुद्धि भी नष्ट होती है और जल्द ही उन्मादावस्था को पहुंच जाती है और इसी अवस्था में भगवान् की असीम दया और उनके साथ युक्त होने का कितना दुर्लभ सुअवसर है यह भी हृदयंगम हुआ। कारावास से पहले मुझे एक घण्टा सवेरे और एक घण्टा शाम को ध्यान करने का अभ्यास था। इस निर्जन कारावास में और कोई काम न होने से ज्यादा देर ध्यानावस्थित रहने की चेष्टा की। किन्तु मनुष्य के सहस्त्रों दिशाओं की ओर भागनेवाले चञ्चल मन को ध्यानार्थ यथेष्ट संयत और एक लक्ष्य-मुखी रखना अनभ्यस्त मनुष्य के लिए सहज नहीं। किसी तरह डेढ़-दो घण्टे एक-मन हो रह पाता, फिर मन विद्रोही हो उठता, देह भी अवसन्न हो पड़

जाती। पहले नाना विचारों में व्यस्त रहता था। बाद में मनुष्य की उस आलापरहित चिन्तन की विषयशून्य असहनीय अकर्मण्यता से मन धीरे-धीरे चिन्तनशक्ति-रहित होने लगा। ऐसी अवस्था होने लगी मानों सहस्र अस्पष्ट विचार मन के सब द्वारों के चारों ओर चक्कर काट रहे हैं किन्तु प्रवेश-पथ निरुद्ध है; दो-एक प्रवेश करने में समर्थ होने पर भी उस निस्तब्ध मनोराज्य की नीरवता से भयभीत हो निःशब्द भाग खड़े होते। इस अनिश्चित अवश अवस्था से अतिशय मानसिक कष्ट पाने लगा। प्रकृति की शोभा से चित्तवृत्ति स्निग्ध होने और तप्त मन को सान्त्वना मिलने की आशा से बाहर की ओर निहारा, किन्तु उसी एकमात्र वृक्ष, नीलाकाश के परिमित टुकड़े और जेल के उसी नीरस दृश्य से मनुष्य का ऐसी अवस्थाप्राप्त मन भला कितनी देर सान्त्वना पा सकता है? दीवारों की ओर ताका, जेल की कोठरी की उस निर्जीव सफेद दीवार के दर्शन से मन जैसे और भी अधिक निरुपाय हो केवल बद्धावस्था की यन्त्रणा ही उपलब्ध कर मस्तिष्क के पिंजरे में छटपटाने लगा। फिर से ध्यान करने बैठा, किसी भी तरह ध्यान न कर सका वरन् उस तीव्र विफल चेष्टा से मन और भी श्रान्त, अकर्मण्य और दग्ध होने लगा। चारों ओर नजर दौड़ायी, अन्ततः जमीन पर कुछ बड़ी-बड़ी काली चींटियों को विवर के पास घूमते-फिरते देखा, उनकी गतिविधि, चेष्टा और चरित्र का निरीक्षण करते-करते समय कट गया। उसके बाद देखता हूं कि छोटी-छोटी लाल चींटियां भी चल-फिर रही हैं। काली और लाल में बड़ा झगड़ा, काली चींटियां लाल को देख काट-काट कर उन्हें मार डालने लगीं। अत्याचार से पीड़ित लाल चींटियों पर बड़ी दया और सहानुभूति उपजी। मैं काली चींटियों को भगा उन्हें बचाने लगा। इससे एक काम जुटा, सोचने का विषय भी मिला, चींटियों की सहायता से ये कुछ दिन कट गये। फिर भी दीर्घ दिनार्द्ध बिताने का कोई उपाय नहीं

जुटता था। मन को समझाया, जबरदस्ती विचारों को खींच लाया किन्तु दिन प्रतिदिन मन विद्रोही होने लगा, हाहाकार करने लगा। काल मानों उस पर असह्य भार बन पीड़ा पहुंचा रहा हो, उस चाप से चूर्ण हो हांफने तक की शक्ति वह नहीं पा रहा था, मानों स्वप्न में शत्रु द्वारा आक्रान्त व्यक्ति गला घोंटने से मरा जा रहा हो एवं हाथ-पैर होते हुए भी हिलने-डुलने की शक्ति न हो। यह अवस्था देख मैं आश्चर्यचकित रह गया! सच है कि मुझे अकर्मण्य और निश्चेष्ट रहना कभी नहीं रुचा, फिर भी कितनी ही बार एकाकी रह चिन्तन-मनन में समय गुजारा है, अब मन में ऐसी क्या दुर्बलता आ गयी है कि थोड़े दिन के इस एकान्त से आकुल हो उठा हूं? सोचने लगा कि शायद उस स्वेच्छाप्राप्त एकान्त और इस परेच्छाप्राप्त एकान्त में प्रभेद है। घर में रहते हुए एकाकी रहना एक बात है और परेच्छावश कारागृह में यह निर्जनवास बिलकुल दूसरी बात। वहां, जब चाहूं मनुष्य का आश्रय ले सकता हूं, पुस्तकगत ज्ञान और भाषा-लालित्य में, बन्धु-बान्धवों के प्रिय सम्भाषण में, रास्ते के कोलाहल में, जगत् के विविध दृश्यों में मन की तृप्ति का साधन पा प्राणों को शीतल कर सकता हूं। किन्तु यहां कठोर नियमों में आबद्ध हो परेच्छा से सब संसर्गों से रहित हो रहना होगा। कहते हैं, जो निर्जनता सह सकता है वह या तो देवता है या पशु, मनुष्य के लिए यह संयम है साध्यातीत। पहले इस बात में विश्वास नहीं कर पाता था, अब समझा कि सचमुच योगाभ्यस्त साधकों के लिए भी यह संयम सहजसाध्य नहीं। याद हो आया इतालवी राजहत्यारे 'ब्रेशी' का भयंकर अन्त। उनके निष्ठुर न्यायाधीशों ने उन्हें प्राण-दण्ड न दे सात साल के निर्जन कारावास की सजा दी थी। एक साल बीतते-न-बीतते ब्रेशी पागल हो गया। तो भी इतने दिन तो सहा! मेरे मन की दृढ़ता क्या इतनी कम है? उस समय नहीं समझ सका था कि भगवान् मेरे साथ खेल रहे हैं, खेल-

खेल में कुछ आवश्यक शिक्षाएं दे रहे हैं। मन की कैसी अवस्था में निर्जन कारावास के कैदी पागलपन की ओर दौड़ते हैं, उन्होंने यह दिखा, कारावास की ऐसी अमानुषिक निष्ठुरता समझा मुझे यूरोपीय जेल-प्रणाली का घोर विरोधी बना दिया, जिससे मैं यथाशक्ति देशवासियों और जगत् को इस बर्बरता से मोड़ दयानुमोदित जेल-प्रणाली का पक्षपाती बनाने की चेष्टा करूं, यह थी उनकी पहली शिक्षा। याद आता है, पन्द्रह साल पहले विलायत से स्वदेश लौटकर जब मैंने बम्बई से प्रकाशित 'इन्दुप्रकाश' पत्रिका में कांग्रेस की निवेदन-नीति के विरुद्ध तीव्र आलोचनात्मक प्रबन्ध लिखने शुरू किये थे तो स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे ने युवकों के मन पर इन प्रबन्धों का प्रभाव पड़ते देख उन्हें बन्द करने के उद्देश्य से, जैसे ही मैं उनसे मिलने गया, मुझे आधे घण्टे तक इस काम को छोड़ कांग्रेस का दूसरा कोई भी कार्यभार ग्रहण करने का उपदेश दिया। उनकी इच्छा मुझे जेल-प्रणाली-सुधार का कार्य देने की थी। रानाडे की इस अप्रत्याशित उक्ति से मैं आश्चर्यचकित और असन्तुष्ट हुआ था और मैंने उस कार्य-भार को अस्वीकार किया था। तब नहीं जानता था कि यह है सुदूर भविष्य का पूर्वाभास-मात्र और एक दिन स्वयं भगवान् मुझे जेल में एक साल रख कर इस प्रणाली की क्रूरता और व्यर्थता एवं सुधार की आवश्यकता दिखायेंगे। अब समझा कि आज की राजनीतिक अवस्था में इस जेल-प्रणाली के सुधार की सम्भावना नहीं, फिर भी, जेल में बैठे-बैठे, अपनी अन्तरात्मा को साक्षी बना, उसका प्रचार करने और उसके सम्बन्ध में युक्ति-तर्क देने की प्रतिज्ञा की जिससे स्वाधीन भारत में विदेशी सभ्यता का यह नारकीय अंश चिपका न रहे। भगवान् की दूसरी अभिसन्धि थी मेरे मन की इस दुर्बलता को मन के आगे रख हमेशा के लिए विनष्ट करना। जो योगावस्था के प्रार्थी हैं उनके लिए जनता और निर्जनता समान होनी उचित हैं।

वास्तव में बहुत थोड़े ही दिनों में यह दुर्बलता झड़ गयी, अब लगता है कि बीस साल अकेले रहने पर भी मन चञ्चल नहीं होगा। मंगलमय अमंगल द्वारा भी परम मंगल साधते हैं। तीसरी अभिसन्धि थी मुझे यह शिक्षा देना कि मेरे योगाभ्यास में स्वचेष्टा से कुछ नहीं होगा, श्रद्धा और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण ही है सिद्धि पाने का पथ; भगवान् प्रसन्न हो स्वयं जो शक्ति, सिद्धि या आनन्द देंगे उसे ही ग्रहण कर उनके कार्य में लगाना ही होगा मेरी योगस्पृहा का एकमात्र उद्देश्य। जिस दिन से अज्ञान का प्रगाढ़ अन्धकार छंटने लगा, उसी दिन से मैं जगत् की सब घटनाओं का निरीक्षण करते-करते मंगलमय श्रीहरि के आश्चर्यमय अनन्त मंगल स्वरूप की उपलब्धि कर रहा हूं। ऐसी कोई घटना नहीं—चाहे वह घटना महान् हो या छोटी से भी छोटी—जिसके द्वारा कोई मंगल सम्पन्न नहीं होता। प्रायः वे एक कार्य द्वारा दो-चार उद्देश्य सिद्ध करते हैं। हम जगत् में बहुत बार अन्धशक्ति की लीला देखते हैं, अपव्यय ही प्रकृति का नियम है—कह कर भगवान् की सर्वज्ञता को अस्वीकार कर ईश्वरीय बुद्धि को दोषी ठहराते हैं। यह अभियोग निर्मूल है। ईश्वरीय शक्ति कभी भी अन्धभाव से कार्य नहीं करती, बूंद भर भी उनकी शक्ति का अपव्यय नहीं हो सकता वरन् वे ऐसे संयत तरीके से अल्प व्यय द्वारा प्रचुर फल उत्पादित करते हैं कि मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता।

इस तरह मन की निश्चेष्टता से पीड़ित हो कुछ दिन कष्ट से समय काटा। एक दिन अपराह्न को कुछ सोच रहा था, विचार उमड़ने लगे, अचानक सारे विचार इतने असंयत और असंलग्न होने लगे कि मैं समझ गया कि विचारों पर बुद्धि की निग्रह-शक्ति लुप्त हो चली है। उसके बाद जब प्रकृतिस्थ हुआ तो देखा कि बुद्धि की निग्रह-शक्ति लुप्त होने पर भी स्वयं बुद्धि लुप्त या पल भर को भी भ्रष्ट नहीं हुई, वरन् शान्त भाव से मन की इस अपूर्व क्रिया का जैसे

निरीक्षण कर रही थी। किन्तु तब मैं उन्मत्तता के भय से त्रस्त हो इस ओर ध्यान नहीं दे पाया। प्राणपन से भगवान् को पुकारा, अपने बुद्धिभ्रंश के निवारण के लिए कहा। उसी क्षण मेरे सम्पूर्ण अन्तःकरण में हठात् ऐसी शीतलता व्यापने लगी, उत्तप्त मन ऐसा स्निग्ध, प्रसन्न और परम सुखी हो उठा कि जीवन में पहले कभी इतनी सुखमय अवस्था अनुभव नहीं कर सका था। जैसे शिशु मातृ-अंक में आश्वस्त और निर्भीक हो सोया रहता है मैं भी मानों विश्वजननी की गोद में उसी तरह सोया रहा। इसी दिन से मेरा कारावास का कष्ट खतम हो गया। इसके बाद कई बार बद्धावस्था की अशान्ति, निर्जन कारावास और कर्महीनता से मन की उद्विग्नता, शारीरिक क्लेश या व्याधि, योगान्तर्गत कातर अवस्थाएं आयीं किन्तु उस दिन भगवान् ने एक पल में अन्तरात्मा में ऐसी शक्ति भर दी कि ये सब दुःख मन पर छाने और मन पर से हट जाने के बाद कोई दाग या चिह्न न छोड़ पाते, दुःख में ही बल और आनन्द अनुभव कर बुद्धि मन के दुःखों का प्रत्याख्यान करने में समर्थ होती। पद्मपत्र पर जलबिन्दुवत् महसूस होता वह दुःख। उसके बाद जब पुस्तकें आयीं तो उनकी आवश्यकता बहुत कम रह गयी थी। पुस्तकें न आने पर भी अब मैं रह सकता था। यद्यपि इन प्रबन्धों का उद्देश्य अपने आन्तरिक जीवन का इतिहास लिखना नहीं फिर भी इस घटना का उल्लेख किये बिना न रह सका। बाद में, दीर्घकालीन निर्जन कारावास में क्योंकर आनन्दपूर्वक रहना सम्भव हुआ वह इस घटना से समझा जा सकेगा। इसी हेतु भगवान् ने वैसी अवस्था रची। उन्होंने पागल न बना निर्जन कारावास में पागल हो जाने की क्रमिक प्रक्रिया का मेरे मन में अभिनय करा बुद्धि को उस नाटक के अविचलित दर्शक के रूप में बिठाये रखा। उससे मुझे शक्ति मिली, मनुष्य की निष्ठुरता के कारण अत्याचार-पीड़ित व्यक्तियों के प्रति दया और सहानुभूति बढ़ी और प्रार्थना की असाधारण
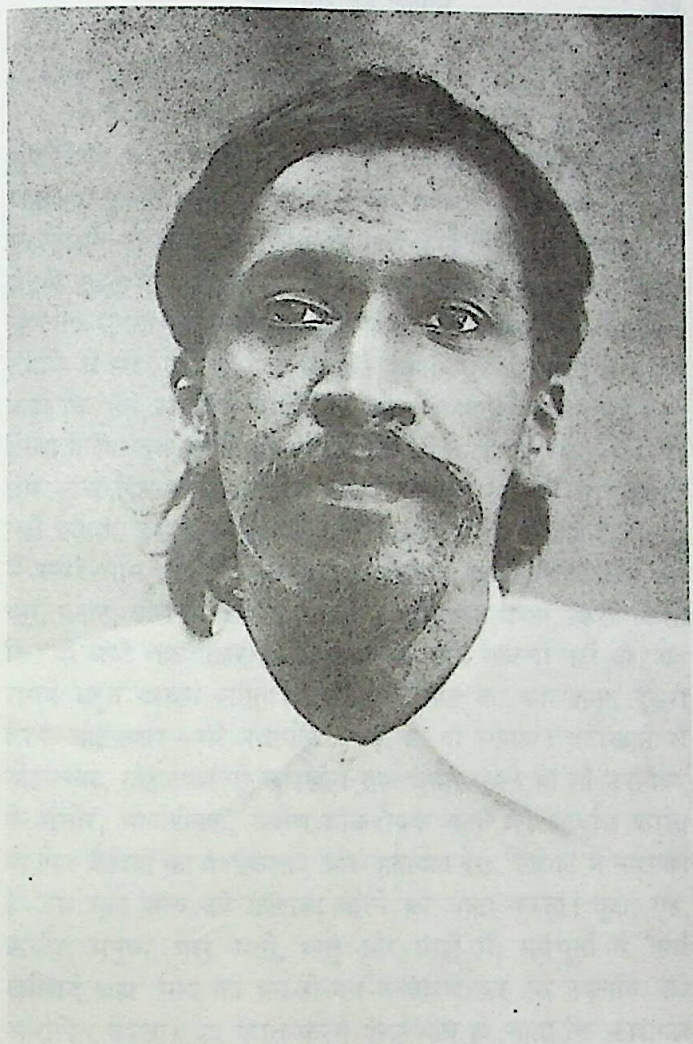
श्रीअरविन्द (१९०८-१९०९)

शक्ति व सफलता हृदयंगम की।

मेरे निर्जन कारावास के समय डॉक्टर डैली और सहकारी सुपरिंटेंडेंट साहब प्रायः हर रोज मेरे कमरे में आ दो-चार बातें कर जाते। पता नहीं क्यों, मैं शुरू से ही उनका विशेष अनुग्रह और सहानुभूति पा सका था। मैं उनके साथ कोई विशेष बात न करता, वे जो पूछते उसका उत्तर-भर दे देता। वे जो विषय उठाते वह या तो चुपचाप सुनता या केवल दो-एक सामान्य बात कह चुप हो जाता। तथापि वे मेरे पास आना न छोड़ते। एक दिन डैली साहब ने मुझसे कहा कि मैंने सहकारी सुपरिंटेंडेंट को कहकर बड़े साहब को मना लिया है कि तुम प्रतिदिन सवेरे-शाम डिक्री के सामने टहल सकोगे। तुम सारा दिन एक छोटी-सी कोठरी में बन्द रहो यह मुझे अच्छा नहीं लगता, इससे मन खराब होता है और शरीर भी। उस दिन से मैं सवेरे-शाम डिक्री के आगे खुली जगह में घूमने लगा। शाम को दस, पन्द्रह, बीस मिनट घूमता लेकिन सवेरे एक घण्टा, किसी-किसी दिन दो घण्टे तक बाहर रहता, समय की कोई पाबन्दी नहीं थी। यह समय बहुत अच्छा लगता। एक तरफ जेल का कारखाना, दूसरी तरफ गोहालघर—मेरे स्वाधीन राज्य की दो सीमाएं। कारखाने से गोहालघर, गोहालघर से कारखाने तक घूमते-घूमते या तो उपनिषद् के गभीर, भावोद्दीपक, अक्षय शक्तिदायक मन्त्रों की आवृत्ति करता या फिर कैदियों का कार्यकलाप और यातायात देख 'सर्वघट में नारायण हैं' इस मूल सत्य को उपलब्ध करने की चेष्टा करता। वृक्ष, गृह, प्राचीर, मनुष्य, पशु, पक्षी, धातु और मिट्टी में, सर्वभूतों में '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' मन्त्र का मन-ही-मन उच्चारण कर इस उपलब्धि को आरोपित करता। यह करते-करते ऐसा भाव हो जाता कि कारागार अब कारागार जैसा न लगता। वह उच्च प्राचीर, वह लौह कपाट, वह सफेद दीवार, वह सूर्यरश्मि-दीप्त नीलपत्र-शोभित वृक्ष, वह छोटा-

मोटा सामान मानों अब अचेतन नहीं रहा, सर्वव्यापी, चैतन्यपूर्ण हो सजीव हो उठा, ऐसा लगता कि वे मुझसे स्नेह करते हैं, मुझे आलिंगन में भर लेना चाहते हैं। मनुष्य, गौ, चींटी और विहंग चल रहे हैं, उड़ रहे हैं, गा रहे हैं, बातें कर रहे हैं, पर है यह सब प्रकृति की क्रीड़ा; भीतर एक महान् निर्मल, निर्लिप्त आत्मा शान्तिमय आनन्द में निमग्न हो विराजमान है। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता मानों भगवान् उस वृक्ष के नीचे खड़े आनन्द की वंशी बजा रहे हैं, और उस माधुर्य से मेरा हृदय मोहे ले रहे हैं। सदा यह एहसास होने लगा कि कोई मुझे आलिंगन में भर रहा है, कोई मुझे गोद में लिये हुए है। इस भावस्फुटन से मेरे सारे मन-प्राण को अधिकृत कर एक निर्मल महती शान्ति विराजने लगी, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्राणों का कठिन आवरण खुल गया और सभी जीवों पर प्रेम का स्रोत उमड़ पड़ा। प्रेम के साथ दया, करुणा, अहिंसा इत्यादि सात्त्विक भाव मेरे रजः-प्रधान स्वभाव को अभिभूत कर और अधिक पनपने लगे। और जैसे-जैसे वे बढ़ने लगे वैसे-वैसे आनन्द भी बढ़ा एवं निर्मल शान्तिभाव गभीर हुआ। मुकद्दमे की दुश्चिन्ता पहले ही दूर हो गयी थी, अब उससे उल्टा विचार मन में आया। भगवान् मंगलमय हैं, मेरे मंगल के लिए ही मुझे कारागृह में लाये हैं, कारामुक्ति और अभियोग-खण्डन अवश्य ही होगा यह दृढ़ विश्वास जम गया। इसके बाद बहुत दिन तक मुझे जेल में कोई भी कष्ट भोगना नहीं पड़ा।

इस अवस्था को घनीभूत होने में कुछ दिन लगे, इसी बीच मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकद्दमा शुरू हुआ। निर्जन कारावास की नीरवता से हठात् बाह्य जगत् के कोलाहल में लाये जाने पर शुरू-शुरू में मन बड़ा विचलित हुआ, साधना का धैर्य टूट गया और पांच-पांच घण्टे तक मुकद्दमे के नीरस और विरक्तिकर बयान सुनने को मन किसी भी तरह राजी नहीं हुआ। पहले अदालत में बैठ

साधना करने की चेष्टा करता, लेकिन अनभ्यस्त मन प्रत्येक शब्द और दृश्य की ओर खिंच जाता, शोरगुल में वह चेष्टा व्यर्थ चली जाती, बाद में भावपरिवर्तन हुआ, समीपवर्ती शब्द और दृश्य मन से बाहर ठेल सारी चिन्तन-शक्ति को अन्तर्मुखी करने की शक्ति जनमी, किन्तु यह मुकद्दमे की प्रथम अवस्था में नहीं हुआ, तब ध्यान-धारणा की प्रकृत क्षमता नहीं थी। इसीलिए यह वृथा चेष्टा त्याग बीच-बीच में सर्वभूत में ईश्वर के दर्शन कर सन्तुष्ट रहता, बाकी समय विपत्ति के साथियों की बातों और उनके कार्य-कलाप पर ध्यान देता, दूसरा कुछ सोचता, या कभी नार्टन साहब की श्रवण-योग्य बात या गवाहों की गवाही भी सुनता। देखता कि निर्जन कारागृह में समय काटना जितना सहज और सुखकर हो उठा है, जनता के बीच और इस गुरुतर मुकद्दमे के जीवन-मरण के खेल के बीच समय काटना उतना सहज नहीं। अभियुक्त लड़कों का हंसी-मजाक और आमोद-प्रमोद सुनना और देखना बड़ा अच्छा लगता, नहीं तो अदालत का समय केवल विरक्तिकर ही महसूस होता। साढ़े चार बजे कैदियों की गाड़ी में बैठ सानन्द जेल लौट आता।

पन्द्रह-सोलह दिन की बन्दी अवस्था के बाद स्वाधीन मनुष्य-जीवन का संसर्ग और एक-दूसरे का मुख देख दूसरे कैदी अत्यन्त आनन्दित हुए। गाड़ी में चढ़ते ही उनकी हंसी और बातों का फव्वारा फूट पड़ता और जो दस मिनट उन्हें गाड़ी में मिलते थे उसमें पल-भर को भी वह स्रोत न थमता। पहले दिन हमें खूब सम्मान के साथ अदालत ले गये। हमारे साथ ही थी यूरोपीयन सार्जेंटों की छोटी पलटन और उनके साथ थीं गोलीभरी पिस्तौलें। गाड़ी में चढ़ते समय सशस्त्र पुलिस की एक टुकड़ी हमें घेरे रहती और गाड़ी के पीछे परेड करती, उतरते समय भी यही आयोजन था। इस साज-सज्जा को देख किसी-किसी अनभिज्ञ दर्शक ने निश्चय ही यह सोचा होगा

कि ये हास्यप्रिय अल्पवयस्क लड़के न जाने कितने दुःसाहसी विख्यात महायोद्धाओं का दल हैं। न जाने उनके प्राणों और शरीर में कितना साहस और बल है जो खाली हाथ सौ पुलिस और गोरों की दुर्भेद्य प्राचीर भेद, पलायन करने में सक्षम हैं। इसीलिए शायद उन्हें इतने सम्मान के साथ इस तरह ले गये। कुछ दिन यह ठाठ चला, फिर क्रमशः कम होने लगा, अन्त में दो-चार सार्जेंट हमें ले जाते और ले आते। उतरते समय वे ज्यादा ख्याल नहीं करते थे कि हम कैसे जेल में घुसते हैं; हम मानों स्वाधीन भाव से घूम-फिरकर घर लौट रहे हों, उसी तरह जेल में घुसते। ऐसी असावधानी और शिथिलता देख पुलिस कमिश्नर साहब और कुछ सुपरिंटेंडेंट क्रुद्ध हो बोले, "पहले दिन पचीस-तीस सार्जेंटों की व्यवस्था की थी, आजकल देखता हूं चार-पांच भी नहीं आते।" वे सार्जेंटों की भर्त्सना करते और रक्षण-निरीक्षण की कठोर व्यवस्था करते; उसके बाद दो-एक दिन और दो सार्जेंट आते और फिर वही पहले जैसी शिथिलता आरम्भ हो जाती! सार्जेंटों ने देखा कि बम-भक्त बड़े निरीह और शान्त लोग हैं, पलायन में उनका कोई प्रयास नहीं, किसी पर आक्रमण करने या हत्या करने की भी मंशा नहीं, उन्होंने सोचा कि हम क्यों अमूल्य समय इस विरक्तिकर कार्य में नष्ट करें। पहले अदालत में घुसते और निकलते समय हमारी तलाशी लेते थे, उससे हम सार्जेंटों के कोमल करस्पर्श का सुख अनुभव करते, इसके अलावा इस तलाशी से किसी के लाभ या क्षति की सम्भावना नहीं थी। स्पष्ट था कि इस तलाशी की आवश्यकता में हमारे रक्षकों की गभीर अनास्था है। दो-चार दिन बाद यह भी बन्द हो गयी। हम अदालत में किताब, रोटी-चीनी जो इच्छा हो निर्विघ्न ले जाते। पहले-पहल छिपा कर, बाद में खुलेआम। हम बम या पिस्तौल चलायेंगे, उनका यह विश्वास शीघ्र ही उठ गया। किन्तु मैंने देखा कि एक भय सार्जेंटों के मन से नहीं गया। कौन जाने
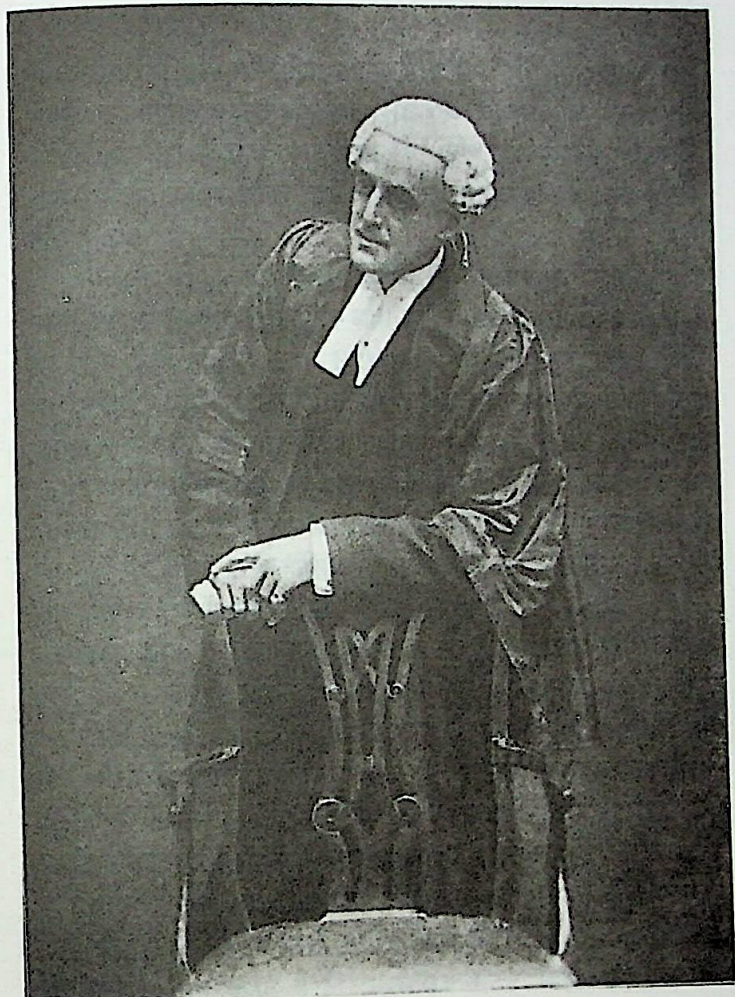
नॉर्टन महाशय, मुकद्दमे के सरकारी वकील

किसके मन में कब मजिस्ट्रेट साहब के महिमान्वित मस्तक पर जूते फेंकने की बदनीयत पैदा हो जाये, ऐसा हुआ तो सर्वनाश। अतः जूते भीतर ले जाना विशेषतया निषिद्ध था, और उस विषय में सार्जेंट हमेशा सतर्क रहते। और किसी तरह की सावधानता के प्रति आग्रह नहीं देखा।

मुकद्दमे का स्वरूप कुछ विचित्र था। मजिस्ट्रेट, परामर्शदाता, साक्षी, साक्ष्य Exhibits (साक्ष्य-सामग्री), आसामी सभी विचित्र। दिन-पर-दिन उन्हीं गवाहों और Exhibits का अविराम प्रवाह, वही परामर्शदाता का नाटकोचित अभिनय, वही बालक-स्वभाव मजिस्ट्रेट की बालकोचित चपलता और लघुता, वही अपूर्व आसामियों का अपूर्व भाव देखते-देखते बहुत बार मन में यह कल्पना उठती कि हम ब्रिटिश विचारालय में न बैठ किसी नाटकगृह के रंगमञ्च पर या किसी कल्पनापूर्ण औपन्यासिक राज्य में बैठे हैं। अब उस राज्य के सब विचित्र जीवों का संक्षिप्त वर्णन करता हूं।

इस नाटक के प्रधान अभिनेता थे सरकार बहादुर के परामर्श-दाता नॉर्टन साहब। प्रधान अभिनेता ही क्यों इस नाटक के रचयिता, सूत्रधार (Stage Manager) और साक्षी-स्मारक (prompter) भी थे,—ऐसी वैचित्र्यमयी प्रतिभा जगत् में विरल है। परामर्शदाता नॉर्टन थे मद्रासी साहब, इसीलिए शायद थे बंगाली बैरिस्टर मण्डली की प्रचलित नीति और भद्रता से अनभ्यस्त एवं अनभिज्ञ। वे कभी राष्ट्रीय महासभा के नेता रहे थे, शायद इसीलिए विरोध और प्रतिवाद सह नहीं सकते थे और विरोधी को शासित करने के आदी थे। ऐसी प्रकृति को लोग कहते हैं हिंस्रस्वभाव। नॉर्टन साहब कभी मद्रास कॉरपोरेशन के सिंह रहे कि नहीं, नहीं कह सकता पर हां, अलीपुर कोर्ट के सिंह तो थे ही। उनकी कानूनी अभिज्ञता की पैठ पर मुग्ध होना कठिन है—वह थी मानों ग्रीष्मकाल की शीत। किन्तु वक्तृता के

अनर्गल प्रवाह में, कथन-शैली में, बात की चोट से राई को पहाड़ बनाने की अद्भुत क्षमता में, निराधार या कुछ आधार लिए हुए कथनों को कहने की दुःसाहसिकता में, साक्षी और जूनियर बैरिस्टर की भर्त्सना में और सफेद को काला करने की मनमोहिनी शक्ति में नॉर्टन साहब की अतुलनीय प्रतिभा देख मुग्ध होना ही पड़ता था। श्रेष्ठ परामर्शदाताओं की तीन श्रेणियां हैं—जो कानून के पाण्डित्य से और यथार्थ व्याख्या और सूक्ष्म विश्लेषण से जज के मन में प्रतीति जनमा सकते हैं; जो चतुराई के साथ साक्षी से सच्ची बात उगलवा और मुकद्दमे-सम्बन्धी घटनाओं और विवेच्य विषय का दक्षता के साथ प्रदर्शन कर जज या जूरी का मन अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं; और जो ऊंची आवाज से, धमकियों से, वक्तृता के प्रवाह से साक्षी को हतबुद्धि कर, मुकद्दमे के विषय को चमत्कारी ढंग से तोड़-मरोड़, गले के जोर से जज या जूरी की बुद्धि भरमा मुकद्दमे जीत सकते हैं। नॉर्टन साहब थे तीसरी श्रेणी में अग्रगण्य। यह कोई दोष की बात नहीं। वे ठहरे परामर्शदाता व्यवसायी आदमी, पैसा लेनेवाले, जो पैसा दे उसका अभीप्सित उद्देश्य सिद्ध करना ही था उनका कर्तव्य-कर्म। आजकल ब्रिटिश कानून-प्रणाली में सच्ची बात बाहर निकालना वादी या प्रतिवादी का असल उद्देश्य नहीं, किसी भी तरह मुकद्दमा जीतना ही है उद्देश्य। अतएव परामर्शदाता वैसी ही चेष्टा करेंगे, नहीं तो उन्हें धर्मच्युत होना होगा। भगवान् द्वारा अन्य गुण न दिये जाने पर जो गुण हैं उनके बल पर ही मुकद्दमा जीतना होगा, अतः नॉर्टन साहब स्वधर्म-पालन ही कर रहे थे। सरकार बहादुर उन्हें हर रोज हजार रुपये देती थी। यह अर्थव्यय वृथा जाने से सरकार बहादुर की क्षति होती, यह क्षति न हो इसके लिए नॉर्टन साहब ने प्राणपन से चेष्टा की थी। पर राजनीतिक मुकद्दमे में आसामी को विशेष उदारता के साथ सुविधा देना और सन्देहजनक एवं अनिश्चित

प्रमाण पर जोर न देना ब्रिटिश कानून-पद्धति का नियम है। नॉर्टन साहब यदि इस नियम को सदा याद रखते तो, मेरे ख्याल में, उनके केस की कोई हानि न होती। दूसरी तरफ कुछ-एक निर्दोषों को निर्जन कारावास की यन्त्रणा न भोगनी पड़ती और निरीह अशोक नन्दी की जान भी बच जाती। परामर्शदाता की सिंह-प्रकृति ही थी शायद इस दोष का मूल। होलिंशेड (Holinshed), हॉल (Hall) और प्लूटार्क (Plutarch) जैसे शेक्सपीयर के लिए ऐतिहासिक नाटकों का उपादान संगृहीत कर रख गये थे, पुलिस ने भी वैसे ही इस मुकद्दमे के नाटक के उपादान का संग्रह किया था। हमारे नाटक के शेक्सपीयर थे नॉर्टन साहब। किन्तु शेक्सपीयर और नॉर्टन में मैंने एक प्रभेद देखा। संगृहीत उपादान का कुछ अंश शेक्सपीयर कहीं-कहीं छोड़ भी देते थे, पर नॉर्टन साहब अच्छा-बुरा, सत्य-मिथ्या, संलग्न-असंलग्न, अणोरणीयान्, महतो महीयान् जो पाते, एक भी न छोड़ते, तिस पर निजी कल्पनासृष्ट प्रचुर Suggestion, Inference, Hypothesis (सुझाव, अनुमान, परिकल्पना) जुटा उन्होंने इतना सुन्दर Plot (कथानक) रचा कि शेक्सपीयर, डेफ़ो इत्यादि सर्वश्रेष्ठ कवि और उपन्यासकार इस महाप्रभु के आगे मात खा गये। आलोचक कह सकते हैं कि जैसे फ़ॉलस्टाफ़ के होटल के बिल में एक आने की रोटी और असंख्य गैलन शराब का समावेश था उसी तरह नॉर्टन साहब के Plot में एक रत्ती प्रमाण के साथ दस मन अनुमान और Suggestions (सुझाव) थे। किन्तु आलोचक भी Plot की परिपाटी और रचना-कौशल की प्रशंसा करने को बाध्य होगा। नॉर्टन साहब ने इस नाटक के नायक के रूप में मुझे ही पसन्द किया, यह देख मैं समधिक प्रसन्न हुआ। जैसे मिल्टन के "Paradise Lost" का शैतान, वैसे ही मैं भी था नॉर्टन साहब के Plot का कल्पनाप्रसूत महाविद्रोह का केन्द्रस्वरूप, असाधारण तीक्ष्णबुद्धि-सम्पन्न, क्षमतावान् और प्रतापशाली bold bad man (ढीठ

बुरा आदमी)। मैं ही था राष्ट्रीय आन्दोलन का आदि और अन्त, स्रष्टा और त्राता, ब्रिटिश साम्राज्य का संहार-प्रयासी। उत्कृष्ट और तेजस्वी अंग्रेजी लेख देखते ही नॉर्टन साहब उछल पड़ते और उच्च स्वर में कहते—अरविन्द घोष। आन्दोलन के जितने भी वैध, अवैध, सुश्रृंखलित अंग या अप्रत्याशित फल—वे सभी अरविन्द घोष की सृष्टि हैं, और क्योंकि वे अरविन्द की सृष्टि हैं इसलिए वैध होने पर भी उसमें अवैध अभिसन्धि गुप्त रूप से निहित है। शायद उनका यह विश्वास था कि अगर मैं पकड़ा न गया तो दो साल के अन्दर-अन्दर अंग्रेजों के भारतीय साम्राज्य का ध्वंस हो जायेगा। किसी फटे कागज के टुकड़े पर मेरा नाम पाते ही नॉर्टन साहब खूब खुश होते और इस परम मूल्यवान् प्रमाण को मजिस्ट्रेट के श्रीचरणों में सादर समर्पित करते। अफसोस है, कि मैं अवतार बनकर नहीं जनमा, नहीं तो मेरे प्रति उस समय की उनकी इतनी भक्ति और मेरे अनवरत ध्यान से नॉर्टन साहब निश्चित ही उसी समय मुक्ति पा जाते जिससे हमारी कारावास की अवधि और गवर्नमेंट का अर्थव्यय दोनों की ही बचत होती। सेशंस अदालत द्वारा मुझे निर्दोष प्रमाणित किये जाने से नॉर्टन-रचित Plot की सारी श्री और गौरव नष्ट हो गये। बेरसिक बीचक्राफ्ट 'हैमलेट' नाटक से हैमलेट को अलग करके बीसवीं सदी के श्रेष्ठ काव्य को हतश्री कर गये। समालोचक को यदि काव्य-परिवर्तन का अधिकार दे दिया जाये तो भला क्यों न होगी ऐसी दुर्दशा? नॉर्टन साहब को और एक दुःख था, कुछ गवाह भी ऐसे बेरसिक थे कि उन्होंने भी उनके रचित Plot के अनुसार गवाही देने से साफ इन्कार कर दिया। नॉर्टन साहब गुस्से से लाल-पीले हो जाते, सिंह-गर्जना से उनके प्राण कंपा उन्हें धमकाते। जैसे कवि को स्वरचित शब्द के अन्यथा प्रकाशन पर और सूत्रधार को अपने दिये गये निर्देशों के विरुद्ध अभिनेता की आवृत्ति, स्वर या अंगभंगिमा पर न्यायसंगत

और अदमनीय क्रोध आता है, वैसा ही क्रोध आता था नॉर्टन साहब को। बैरिस्टर भुवन चटर्जी के साथ हुए संघर्ष का कारण यह सात्त्विक क्रोध ही था। चटर्जी महाशय के जितना रसायनभिज्ञ पुरुष तो कोई नहीं देखा। उन्हें रत्ती भर भी समय-असमय का ज्ञान नहीं था। नॉर्टन साहब जब संलग्न-असंलग्न का विचार न कर केवल कवित्व की खातिर जिस-तिस प्रमाण को घुसेड़ते, तब चटर्जी महाशय खड़े हो असंलग्न या inadmissible (अमान्य) कह आपत्ति करते। वे समझ न सके कि ये साक्ष्य इसलिए नहीं पेश किये जा रहे कि ये संलग्न या कानून-सम्मत हैं वरन् इसलिए कि नॉर्टनकृत नाटक में शायद उपयोगी हों। इस असंगत व्यवहार से नॉर्टन ही क्यों, बर्ली साहब तक झुंझला उठते। एक बार बर्ली साहब ने चटर्जी महाशय को बड़े करुण स्वर में कहा था, "Mr. Chatterjee, we were getting on very nicely before you came," आपके आने से पहले हम निर्विघ्न मुकद्दमा चला रहे थे। सच ही तो है, नाटक की रचना के समय बात-बात पर आपत्ति उठाने से नाटक भी आगे नहीं बढ़ता और दर्शकों को भी मज़ा नहीं आता।

यदि नॉर्टन साहब थे नाटक के रचयिता, प्रधान अभिनेता और सूत्रधार तो मजिस्ट्रेट बर्ली को कहा जा सकता है नाटककार का पृष्ठपोषक या patron। बर्ली साहब शायद थे स्कॉच जाति के गौरव। उनका चेहरा स्कॉटलैण्ड का स्मारक-चिह्न था। खूब गोरी, खूब लम्बी, अति कृश, दीर्घ देहयष्टि पर छोटा-सा सिर देख ऐसा लगता था जैसे अग्रभेदी आक्टोरलोनी के monument (स्मारक) पर छोटे-से आक्टोरलोनी बैठे हों, या क्लियोपेट्रा के obelisk (स्तम्भ) के शिखर पर एक पका नारियल रखा हो। उनके बाल थे धूसर वर्ण (sandy haired) और स्कॉटलैण्ड की सारी ठण्ड और बर्फ उनके चेहरे के भाव पर जमी हुई थी। जो इतना दीर्घकाय हो उसकी बुद्धि

भी तद्रूप होनी चाहिये, नहीं तो प्रकृति की मितव्ययिता के सम्बन्ध में सन्देह होता है। किन्तु इस प्रसंग में, बर्ली की सृष्टि के समय, लगता है, प्रकृति देवी कुछ अनमनी एवं अन्यमनस्क हो गयी थीं। अंग्रेज कवि मार्लो ने इस मितव्ययिता का infinite riches in a little room (छोटे-से भण्डार में असीम धन) कह वर्णन किया है किन्तु बर्ली का दर्शन कवि के वर्णन से विपरीत भाव मन में जगाता है— infinite room में little riches। सचमुच, इस दीर्घ देह में इतनी थोड़ी विद्या-बुद्धि देख दुःख होता था और इस तरह के अल्पसंख्यक शासनकर्ताओं द्वारा तीस कोटि भारतवासी शासित हो रहे हैं यह याद कर अंग्रेजों की महिमा और ब्रिटिश शासन-प्रणाली पर प्रगाढ़ भक्ति उमड़ती थी। श्रीयुत व्योमकेश चक्रवर्ती द्वारा जिरह करते समय बर्ली साहब की विद्या की पोल खुली। इतने साल मजिस्ट्रेटगिरी करने के बाद भी यह निर्णय करने में उनका सिर घूम गया कि उन्होंने अपने करकमलों में यह मुकद्दमा कब ग्रहण किया या कैसे मुकद्दमा ग्रहण किया जाता है, इस समस्या को सुलझाने में असमर्थ हो चक्रवर्ती साहब पर इसका भार दे साहब स्वयं निष्कृति पाने के लिए सचेष्ट हुए। अभी भी यह प्रश्न मुकद्दमे की अतिजटिल समस्याओं में से एक गिना जाता है कि बर्ली ने कब मुकद्दमा अपने हाथ में लिया था। चटर्जी महाशय के प्रति किये गये जिस करुण निवेदन का उल्लेख मैंने किया है उससे भी साहब की चिन्तनधारा का अनुमान लगाया जा सकता है। शुरू से ही वे नॉर्टन साहब के पाण्डित्य और वाग्विलास से मन्त्रमुग्ध हो उनके वश में हो गये थे। ऐसे विनीत भाव से नॉर्टन द्वारा प्रदर्शित पथ का अनुसरण करते, नॉर्टन की हां में हां मिलाते, नॉर्टन के हंसने से हंसते, नॉर्टन के कुपित होने पर कुपित होते कि यह सरल शिशुवत् आचरण देख कभी-कभी मन में प्रबल स्नेह और वात्सल्य का आविर्भाव होता। बर्ली के स्वभाव में निरा लड़कपन

था। उन्हें कभी भी मजिस्ट्रेट न मान सका, ऐसा लगता मानों स्कूल का छात्र हठात् स्कूल का शिक्षक बन शिक्षक के उच्च मञ्च पर चढ़ बैठा है। ऐसे ही वे कोर्ट का काम चलाते। कोई उनके साथ अप्रिय व्यवहार करता तो स्कूली शिक्षक की तरह शासन करते। हममें से यदि कुछ मुकद्दमे के प्रहसन से विरक्त हो आपस में बातें करने लगते तो बर्ली साहब स्कूलमास्टर की तरह बिगड़ने लगते, उनकी बात न सुनने पर सबको खड़े हो जाने की आज्ञा देते, उसका भी तुरन्त पालन न किया तो प्रहरी को कहते हमें खड़ा कर देने के लिए। हम स्कूलमास्टर के इस रंग-ढंग को देखने के इतने आदी हो गये थे कि जब बर्ली और चटर्जी महाशय का झगड़ा खड़ा हुआ तो हम प्रति क्षण इस आशा में थे कि अब बैरिस्टर साहब को खड़े रहने का दण्ड मिलेगा। बर्ली साहब ने लेकिन उल्टा रास्ता पकड़ा, चिल्लाते हुए "Sit down, Mr. Chatterjee" (बैठ जाइये, मि. चटर्जी) कह अलीपुर स्कूल के इस नवागत उद्दण्ड छात्र को बिठा दिया। जैसे कोई-कोई मास्टर छात्र के किसी प्रश्न से या पढ़ाते समय अतिरिक्त व्याख्यान चाहने से खीजकर उसे डांट देते हैं, बर्ली भी आसामी के वकील की आपत्ति पर खीज उसे डपट देते। कोई-कोई साक्षी नॉर्टन को परेशान करते। नॉर्टन सिद्ध करना चाहते थे कि अमुक लेख में अमुक आसामी के हस्ताक्षर हैं, साक्षी यदि कहते कि नहीं, यह तो ठीक उस लेख की तरह नहीं, फिर भी हो सकता है, कहा नहीं जा सकता—बहुत-से साक्षी इसी तरह का उत्तर देते थे—तो नॉर्टन अधीर हो उठते। बक-झक कर, चिल्ला कर, डांट-डपट कर किसी भी उपाय से अभीप्सित उत्तर उगलवाने की चेष्टा करते। उनका अन्तिम प्रश्न होता, "What is your belief?" तुम क्या मानते हो, हां या ना? साक्षी न हां कह पाते न ना। घुमा-फिरा बार-बार वही उत्तर देते। नॉर्टन को यह समझाने की चेष्टा करते कि उनका कोई भी

belief (विश्वास) नहीं, वे सन्देह में झूल रहे हैं। किन्तु नॉर्टन वह उत्तर नहीं चाहते थे, बार-बार मेघगर्जना करते हुए उसी सांघातिक प्रश्न से साक्षी के सिर पर वज्राघात करते, "Come, sir, what is your belief?" (हां, तो फिर क्या राय है महाशय, आपकी?) नॉर्टन के क्रुद्ध होते ही बर्ली भी ऊपर से गरजते, "टोमारा क्या विश्वास है?" बेचारे साक्षी महाविपद् में पड़ जाते। उनका कोई विश्वास नहीं लेकिन एक तरफ से मजिस्ट्रेट, दूसरी तरफ से नॉर्टन क्षुधित व्याघ्र की तरह उनकी बोटी-बोटी अलग कर अमूल्य अप्राप्य विश्वास बाहर निकलवाने को तत्पर हो दोनों तरफ से भीषण गर्जन कर रहे हैं। बहुधा विश्वास ज़ाहिर न होता, चकरायी बुद्धि और पसीने से तर साक्षी उस यन्त्रणा-स्थल से अपने प्राण बचा भाग खड़े होते। कोई-कोई प्राणों को ही विश्वास से प्रियतर मान नॉर्टन साहब के चरण-कमलों में झूठे विश्वास का उपहार चढ़ा बच निकलते, नॉर्टन भी अति सन्तुष्ट हो बाकी जिरह स्नेहसहित सम्पन्न करते। ऐसे परामर्शदाता के साथ आ मिले ऐसे मजिस्ट्रेट तभी तो मुकद्दमे ने और भी अधिक नाटकीय रूप धारण कर लिया था।

कुछ-एक साक्षियों के विरुद्धाचरण करने पर भी अधिकांश नॉर्टन साहब के प्रश्नों का अनुकूल उत्तर देते। इनमें जाने-पहचाने कम ही थे। कोई-कोई किन्तु परिचित भी था। देवदास करण महाशय ने हमारी विरक्ति दूर कर हमें खूब हंसाया था, चिरकाल हम उनके कृतज्ञता के ऋण में बंधे रहेंगे। इन साक्षी ने यह गवाही दी थी कि मेदिनीपुर के सम्मेलन के समय जब सुरेन्द्र बाबू ने अपने छात्रों से गुरुभक्ति के बारे में पूछा था तब अरविन्द बाबू बोल पड़े थे, "द्रोण ने क्या किया?" यह सुनते ही नॉर्टन साहब के आग्रह और कौतुहल की सीमा न रही, उन्होंने निस्सन्देह यह सोचा होगा कि द्रोण या तो कोई बम का भक्त है या राजनीतिक हत्यारा या मानिकतला बागान

या छात्रमण्डली से संयुक्त। नॉर्टन के ख्याल में इस वाक्य का अर्थ शायद यह था कि अरविन्द घोष ने सुरेन्द्र बाबू को गुरुभक्ति के बदले बम का पुरस्कार देने का परामर्श दिया था, तब तो मुकद्दमे में बड़ी सुविधा हो सकती है। अतएव उन्होंने साग्रह प्रश्न किया, "द्रोण ने क्या किया?" शुरू में साक्षी किसी भी तरह प्रश्न का उद्देश्य समझ न सके। पांच मिनट तक इसे लेकर खींचतान चलती रही, अन्त में करण महाशय ने दोनों हाथ ऊपर फैला नॉर्टन साहब को जतलाया, "द्रोण ने अनेक चमत्कार दिखलाये थे।" इससे नॉर्टन साहब सन्तुष्ट नहीं हुए। द्रोण के बम का अनुसन्धान न मिलने तक सन्तुष्ट हों भी कैसे? दुबारा पूछा, "अनेक चमत्कार क्या बला है? क्या विशेष किया है उन्होंने?" साक्षी ने इसके अनेकों उत्तर दिये, एक से भी द्रोणाचार्य के जीवन के इस गुप्त रहस्य का भेद नहीं खुला! नॉर्टन साहब भड़क उठे, गरजना शुरू किया। साक्षी भी चिल्लाने लगे। एक वकील ने हंसते हुए यह सन्देह व्यक्त किया कि शायद साक्षी को पता नहीं कि द्रोण ने क्या किया। करण महाशय इस पर क्रोध और क्षोभ से आगबबूला हो उठे। चिल्लाये, "क्या? मैं? मैं नहीं जानता कि द्रोण ने क्या किया? वाह, क्या मैंने वृथा ही सारा महाभारत पढ़ा?" आधे घण्टे तक द्रोणाचार्य की मृत-देह पर करण और नॉर्टन का महायुद्ध चला। हर पांच मिनट बाद अलीपुर विचारालय को कंपाते नॉर्टन अपना प्रश्न गुंजाने लगे, "Out with it, Mr. Editor! What did Drona do?" (हां, बताइये-बताइये, सम्पादक महाशय, द्रोण ने क्या किया?) उत्तर में सम्पादक महाशय ने एक लम्बी रामकहानी आरम्भ की, किन्तु द्रोण ने क्या किया, इसका कोई विश्वसनीय संवाद नहीं मिला। सारी अदालत ठहाकों से गूंज उठी। अन्त में टिफिन के समय करण महाशय जरा ठण्डे दिमाग से सोच-समझ कर लौटे और समस्या की यह मीमांसा बतलायी कि बेचारे द्रोण ने कुछ नहीं किया,

बेकार ही उनकी परलोकगत आत्मा को ले आधे घण्टे तक खींच-तान हुई, अर्जुन ने ही गुरु द्रोण का वध किया था। अर्जुन के इस मिथ्या अपवाद से द्रोणाचार्य ने निस्तार पा कैलाश पर सदाशिव को धन्यवाद दिया होगा कि करण महाशय की गवाही के कारण अलीपुर के बम-केस में उन्हें कठघरे में खड़ा नहीं होना पड़ा। सम्पादक महाशय की एक बात से सहज ही अरविन्द घोष के साथ उनका सम्बन्ध प्रमाणित हो जाता। किन्तु आशुतोष सदाशिव ने उनकी रक्षा की।

जो गवाही देने आये थे उन्हें तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पुलिस और गोयंदा, पुलिस के प्रेम में आबद्ध निम्नश्रेणी के लोग और सज्जन, और तीसरे अपने दोषवश पुलिस-प्रेम से वञ्चित, अनिच्छा से आये हुए गवाह। हर श्रेणी का गवाही देने का ढंग था अलग-अलग। पुलिस महोदय प्रफुल्ल भाव से, अम्लानवदन अपने पूर्वज्ञात वक्तव्यों को मनमाने ढंग से बोल जाते, जिसे पहचानना होता पहचान लेते—कोई सन्देह नहीं, दुविधा नहीं, भूल-चूक नहीं। पुलिस के संगी-साथी अतिशय आग्रह के साथ गवाही देते, जिसे पहचानना होता उसे भी पहचान लेते और जिसे नहीं पहचानना होता उसे भी बहुत बार अतिशय उत्सुकतावश पहचान लेते। अनिच्छा से आये गवाह जो कुछ जानते होते वही कहते, लेकिन वह बहुत थोड़ा होता; नॉर्टन साहब उससे असन्तुष्ट हो और यह सोचकर कि साक्षी के पेट में अपार मूल्यवान् और सन्देहनाशक प्रमाण हैं, जिरह के बल पर उसका पेट चीर उन्हें बाहर निकालने की भरपूर चेष्टा करते। इससे साक्षी महाविपद् में पड़ जाते। एक ओर नॉर्टन साहब़ की गर्जना और बर्ली साहब की लाल-लाल आंखें, दूसरी ओर झूठी गवाही दे देशवासियों को कालेपानी भेजने का महापाप। गवाहों के सामने एक गुरुतर प्रश्न उठ खड़ा होता, नॉर्टन और बर्ली को खुश करें या भगवान् को। एक

तरफ क्षणस्थायी विपत्ति—मनुष्यों का कोप, दूसरी ओर पाप का दण्ड—नरक और परजन्म में दुःख। लेकिन वे सोचते, नरक और परजन्म तो दूर की बातें हैं, मनुष्यकृत विपद् तो उन्हें अगले क्षण ही ग्रस सकती है। बहुतों के मन में यह डर था कि मिथ्या साक्ष्य देने के लिए राजी न होने पर भी मिथ्या साक्ष्य के अपराध में पकड़े जायेंगे, क्योंकि ऐसे स्थलों पर परिणाम के दृष्टान्त विरल नहीं। अतएव इस श्रेणी के साक्षियों को जो समय साक्षी के कठघरे में अतिवाहित करना पड़ता वह उनके लिए विलक्षण भीति और यन्त्रणा का समय होता। जिरह शेष होनेपर उनके अर्द्ध-निर्गत प्राण फिर से देह में लौट उन्हें यन्त्रणामुक्त करते। कुछ-एक साहस के साथ गवाही देते, नॉर्टन की गर्जना की परवाह न करते, अंग्रेज परामर्शदाता भी यह देख जातीय प्रथा का अनुसरण कर नरम पड़ जाते। इस तरह कितने ही साक्षी आये, कितनी तरह की गवाहियां दे गये, किन्तु एक ने भी पुलिस के लिए उल्लेखनीय कोई सुविधा नहीं की। एक ने साफ कहा—मैं कुछ नहीं जानता, समझ नहीं आता क्यों पुलिस मुझे जबरदस्ती खींच लायी है! इस तरह का मुकद्दमा चलाना शायद भारत में ही सम्भव है, दूसरे देशों में जज इससे झुंझला उठते और पुलिस का गंजन कर अच्छा सबक सिखाते। बिना अनुसन्धान किये दोषी-निर्दोष का विचार न कर कठघरे में खड़ा करना, अन्दाज़ से सौ-सौ साक्षी खड़े कर देश का पैसा बहाना और आसामियों को निरर्थक लम्बे समय तक कारा-यन्त्रणा में रखना इस देश की पुलिस को ही शोभा देता है। लेकिन बेचारी पुलिस क्या करे? वह तो नाम की गोयंदा थी, उसमें जब वह क्षमता ही नहीं थी तो ऐसे साक्षियों के लिए एक विशाल जाल फेंक कर अन्दाज़ से उत्तम, मध्यम और अधम साक्षी फंसा कठघरे में खड़ा करना ही था एकमात्र उपाय। क्या मालूम शायद वे कुछ जानते हों, कुछ प्रमाण दे भी दें?

आसामियों को पहचानने की व्यवस्था भी बड़ी रहस्यमयी थी। पहले साक्षी से पूछा जाता, तुम इनमें से किसी को पहचान सकोगे? साक्षी यदि कहते, "हां, पहचान सकता हूं" तो नॉर्टन साहब हर्षोत्फुल्ल हो तुरत कठघरे में Identification parade (पहचान-परेड) की व्यवस्था करा वहां उन्हें अपनी स्मरणशक्ति को चरितार्थ करने का आदेश देते। यदि वे कहते, "पता नहीं, शायद पहचान भी लूं," तो जरा नाराजगी से कहते, "अच्छा, जाओ, चेष्टा करो।" यदि कोई कहता "नहीं, नहीं कर सकूंगा, मैंने उन्हें नहीं देखा या ध्यान नहीं दिया" तो भी नॉर्टन साहब उन्हें न छोड़ते। शायद इतने चेहरे देख पूर्वजन्म की कोई स्मृति ही जागृत हो जाये इसलिए उसे परीक्षा करने को भेज देते। साक्षी में वैसी योगशक्ति नहीं थी। शायद पूर्वजन्मवाद में आस्था भी नहीं, वे आसामियों की दीर्घ दो पंक्तियों के बीच सार्जेंटों के नेतृत्व में, शुरू से अन्त तक गम्भीर भाव से कूच करते हुए, हमारे चेहरों को बिना देखे ही सिर हिला कर कहते—नहीं, नहीं पहचानता। निराश हृदय नॉर्टन इस मत्स्यशून्य जीवन्त जाल को समेट लेते। मनुष्य की स्मरणशक्ति कितनी प्रखर और अभ्रान्त हो सकती है इसका अपूर्व प्रमाण मिला इस मुकद्दमे में। तीस-चालीस आदमी खड़े हैं, उनका नाम नहीं पता, किसी भी जन्म में एक बार भी उनके साथ बातचीत नहीं हुई, फिर भी दो मास पहले किसे देखा है, किसे नहीं देखा, अमुक को अमुक तीन जगह देखा, अमुक दो जगह नहीं; एक बार उसे दांत मांजते हुए देखा था इसलिए उसका चेहरा जन्म-जन्मान्तर के लिए मेरे मन में अंकित रह गया है। इन्हें कब देखा, क्या कर रहे थे, कौन साथ थे, या एकाकी थे, कुछ भी याद नहीं, फिर भी उनका चेहरा मेरे मन में जन्म-जन्मान्तर के लिए अंकित है; हरि को दस बार देखा है इसलिए उन्हें भूलने की कोई सम्भावना नहीं, श्याम को एक बार सिर्फ आधे मिनट के लिए देखा लेकिन उसे

भी मरते दम तक नहीं भूल सकूंगा, भूल-चूक होने की कोई सम्भावना नहीं,—ऐसी स्मरणशक्ति इस अपूर्ण मानव प्रकृति में, इस तमोभिभूत मर्त्य धाम में साधारणतः नहीं मिलती। एक नहीं, दो नहीं, प्रत्येक पुलिसपुंगव में ऐसी विचित्र, निर्भूल, अभ्रान्त स्मरणशक्ति देखने को मिली। इससे सी॰ आई॰ डी॰ पर हमारी श्रद्धा-भक्ति दिन-दिन प्रगाढ़ होने लगी। अफसोस है, सेशन्स कोर्ट में वह भक्ति कम करनी पड़ी थी। मजिस्ट्रेट को कोर्ट में दो-एक बार सन्देह न हुआ हो ऐसी बात नहीं। जब यह लिखित गवाही देखी कि शिशिर घोष अप्रैल में बम्बई में थे और ठीक उसी समय कुछ एक पुलिसपुंगवों ने उन्हें स्कॉट्स लेन और हैरिसन रोड पर भी देखा तब थोड़ा-सा सन्देह तो हुआ ही था। जब श्रीहट्टवासी वीरेन्द्रचन्द्र सेन स्थूल शरीर से बनियाचंग में पितृभवन में रहते हुए भी बागान में और स्कॉट्स लेन में—जिस स्कॉट्स लेन का पता वीरेन्द्र नहीं जानते थे, इसका अकाट्य प्रमाण लिखित साक्ष्य में मिला था—उनका सूक्ष्म शरीर सी॰ आई॰ डी॰ की सूक्ष्म दृष्टि ने देखा था, तब और भी सन्देह हुआ था। विशेषकर जिन्होंने स्कॉट्स लेन में कभी भी पदार्पण नहीं किया, उन्होंने जब सुना कि पुलिस ने उन्हें वहां कई बार देखा है, तब सन्देह का उद्रेक होना कुछ अस्वाभाविक नहीं। मेदिनीपुर के एक साक्षी—मेदिनीपुर के आसामियों से पता लगा कि वे भी गोयंदा हैं—बोले कि उन्होंने श्रीहट्ट के हेमचन्द्र सेन को तमलूक में वक्तृता देते देखा था। किन्तु हेमचन्द्र ने अपनी स्थूल आंखों से कभी तमलूक नहीं देखा, तो भी उनके छायामय शरीर ने श्रीहट्ट से सुदूर तमलूक जाकर तेजस्वी और राजद्रोहपूर्ण स्वदेशी व्याख्यान दे गोयंदा महाशय की चक्षुतृप्ति और कर्णतृप्ति की थी। किन्तु चन्दननगर के चारुचन्द्र राय के छायामय शरीर ने मानिकतला में उपस्थित हो इससे भी ज्यादा रहस्यमय काण्ड मचाया था। पुलिस के दो कर्मचारियों ने शपथ खाकर कहा था कि

उन्होंने अमुक दिन अमुक समय चारुबाबू को श्याम-बाजार में देखा था, वे श्याम-बाजार से एक षड्यन्त्रकारी के साथ मानिकतला बागान तक पैदल गये थे, उन्होंने भी वहां तक उनका पीछा किया था और बहुत पास से देखा था, अतः भूल होने की गुंजायश नहीं। वकील की जिरह से दोनों साक्षी टस से मस न हुए। **व्यासस्य वचनं सत्यम्**, पुलिस की गवाही भी अन्यथा नहीं हो सकती। दिन और समय के सम्बन्ध में भी उनकी भूल होने की कोई बात नहीं, क्योंकि ठीक उसी दिन, उसी समय चारुबाबू कॉलिज से छुट्टी ले कलकत्ते में उपस्थित थे, चन्दननगर के डुप्ले कॉलिज के अध्यक्ष की गवाही से यह प्रमाणित हुआ था। किन्तु आश्चर्य! ठीक उसी दिन, उसी समय चारुबाबू हावड़ा स्टेशन के प्लेटफार्म पर चन्दननगर के मेयर तार्दिवाल, तार्दिवाल की पत्नी, चन्दननगर के गवर्नर और अन्यान्य सम्भ्रान्त यूरोपीय सज्जनों के साथ बातें करते-करते टहल रहे थे। ये सब इसी बात को याद कर चारुबाबू के पक्ष में गवाही देने के लिए राजी हुए थे। फ्रेंच गवर्नमेंट की चेष्टा से पुलिस द्वारा चारुबाबू को छोड़ दिये जाने पर विचारालय में इस रहस्य का उद्घाटन नहीं हुआ। किन्तु चारुबाबू को मैं यह परामर्श देता हूं के वे ये सब प्रमाण Psychical Research Society को भेज मनुष्यजाति के ज्ञान-सञ्चय में सहायता करें। पुलिस की गवाहियां मिथ्या नहीं हो सकतीं,—विशेषकर सी॰ आई॰ डी॰ की—अतएव थियोसोफ़ी के आश्रय के अलावा हमारे लिए और कोई चारा नहीं। सौ बात की एक बात, ब्रिटिश कानून-प्रणाली में कितनी आसानी से निर्दोषों को जेल, कालापानी और फांसी तक हो सकती है इसका दृष्टान्त इस मुकद्दमे में पग-पग पर पाया। कठघरे में खड़े न होने तक पाश्चात्य विचार-प्रणाली की मायावी असत्यता हृदयंगम नहीं की जा सकती। यूरोप की यह प्रणाली है जुए का एक खास खेल; मनुष्य की स्वाधीनता, मनुष्य का सुख-दुःख, उसकी और

उसके परिवार एवं आत्मीय बन्धु की जीवनव्यापी यन्त्रणा, अपमान और जीवन्त मृत्यु को ले जुए का खेल। इससे कितने दोषी बच जाते हैं और कितने निर्दोष मर जाते हैं इसकी कोई गिनती नहीं। यूरोप में Socialism (समाजवाद) और Anarchism (अराजकतावाद) का कितना प्रचार और प्रभाव हुआ है वह इस जुए में एक बार फंसने पर, इस निष्ठुर निर्विचार समाजरक्षक पेषणयंत्र में एक बार पड़ने पर पहली दृष्टि में ही समझ में आ जाता है। ऐसी अवस्था में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि अनेक उदार-चेता दयालु जन कहने लग गये हैं कि इस समाज को तोड़ दो, चूर-मार कर दो; इतने पाप, इतने दुःख, इतने निर्दोषों के तप्त निःश्वास और हृदय के खून से यदि समाज की रक्षा करनी हो तो बेकार है वह रक्षा।

मजिस्ट्रेट की कोर्ट में एकमात्र विशेष उल्लेखनीय घटना थी नरेन्द्रनाथ गोस्वामी की गवाही। उस घटना का वर्णन करने से पहले अपनी विपदा के संगी युवक आसामियों के बारे में कहता चलूं। कोर्ट में इनका आचरण देख अच्छी तरह समझ गया था कि बंगाल में नवयुग आ गया है, नयी सन्तति मां की गोद में वास करना आरम्भ कर चुकी है। तत्कालीन बंगाली लड़के दो तरह के थे, या तो थे शान्त, शिष्ट, निरीह, सच्चरित्र, भीरु, आत्मसम्मान और उच्चाकांक्षा से शून्य; या दुश्चरित्र, दुर्दान्त, अस्थिर, ठग, संयम और साधुता से शून्य! इन दो चरमावस्थाओं के बीच नानारूप जीव बंगजननी की क्रोड़ में जनमे थे, लेकिन आठ-दस असाधारण प्रतिभावान्, शक्तिमान्, भविष्य के पथ-प्रदर्शकों को छोड़ इन दो श्रेणियों के अलावा तेजस्वी आर्य सन्तान प्रायः देखने में नहीं आती थी। बंगाली में बुद्धि थी, मेधाशक्ति थी लेकिन शक्ति नहीं थी; मनुष्यत्व नहीं था। लेकिन इन लड़कों को देखते ही लगता था मानों अन्य युग के अन्य शिक्षाप्राप्त, उदारचेता, दुर्दान्त तेजस्वी पुरुष फिर से भारतवर्ष में लौट आये हैं।

वह निर्भीक सरल दृष्टि, वह तेजपूर्ण वाणी, वह चिन्ताशून्य आनन्दमय हास्य, इस घोर विपद् के समय भी वह अक्षुण्ण तेजस्विता, मन की प्रसन्नता, विमर्शता, चिन्ता या सन्ताप का अभाव, उस समय के तमःक्लिष्ट भारतवासी का नहीं, नूतन युग का, नूतन जाति का, नूतन कर्मस्रोत का लक्षण है। ये यदि हत्यारे हों तो कहना पड़ेगा कि हत्या की रक्तमयी छाया उनके स्वभाव पर नहीं पड़ी, क्रूरता, उन्मत्तता और पाशविक भाव उनमें कतई नहीं था। उन्होंने भविष्य की या मुकद्दमे के फल की जरा भी चिन्ता न कर कारावास के दिन बालकोचित आमोद में, हंसी में, खेल में, पढ़ने-सुनने में, समालोचना में बिताये। बहुत जल्दी ही उन्होंने जेल के कर्मचारी, सिपाही, कैदी, यूरोपीय सार्जेंट, जासूस, कोर्ट के कर्मचारी सभी के साथ मैत्री का नाता जोड़ लिया था एवं शत्रु-मित्र, बड़े-छोटे का विचार न कर सबके साथ बातचीत, हंसी-मजाक करने लग गये थे। कोर्ट का समय उन्हें बड़ा विरक्तिकर लगता, क्योंकि मुकद्दमे के प्रहसन में रस बहुत कम आता था। यह समय काटने के लिए उनके पास न पढ़ने को किताब थी न बात करने की अनुमति। जो योग करना शुरू कर चुके थे, उन्होंने तब तक गुल-गपाड़े में ध्यान करना नहीं सीखा था, उनके लिए समय काटना पहाड़ हो जाता। शुरू में दो-चार जन पढ़ने के लिए किताब अन्दर लाने लगे, उनकी देखा-देखी बाकी सबने भी उसी उपाय का सहारा लिया। उसके बाद एक अद्‌भुत दृश्य देखने को मिलता—मुकद्दमा चल रहा है, तीस-चालीस आसामियों के समस्त भविष्य को ले खींचा-तानी चल रही है, उसका फल हो सकता है फांसी के तख्ते पर मृत्यु या आजीवन कालापानी, किन्तु उस ओर दृक्पात न कर उनमें से कोई बंकिम का उपन्यास, कोई विवेकानन्द का राजयोग या Science of Religions, कोई गीता, कोई पुराण तो कोई यूरोपीय दर्शन एकाग्र मन से पढ़ रहा होता। अंग्रेज सार्जेंट

या देशी सिपाही कोई भी उनके इस आचरण में बाधा नहीं देता। वे सोचते थे कि यदि इससे ही इतने सारे पिंजराबद्ध व्याघ्र शान्त रहें तो हमारा काम भी कम होता है और इससे किसी की क्षति भी नहीं होती। लेकिन एक दिन बर्ली साहब की दृष्टि खिंच गयी इस दृश्य की ओर, असह्य हो उठा मजिस्ट्रेट साहब को यह आचरण। दो दिन तो वे कुछ नहीं बोले लेकिन और ज्यादा सह न सके, पुस्तकें लाने की मनाही कर दी। असल में बर्ली इतना सुन्दर विचार कर रहे थे कि उसे सुनकर कहां तो सबको आनन्द लेना चाहिये था, उल्टे पढ़ रहे थे सब पुस्तकें। यह तो बर्ली के गौरव और ब्रिटिश जस्टिस की महिमा के प्रति घोर असम्मान प्रदर्शित करना था, इसमें सन्देह नहीं।

हम जितने दिन अलग-अलग कोठरियों में बन्द थे उतने दिन केवल गाड़ी में, मजिस्ट्रेट के आने से पहले एक घण्टा या आधा घण्टा और खाने के समय कुछ बातें करने का अवसर पाते। जिनका परस्पर परिचय या आलाप था वे इस समय cell (सेल) की नीरवता और निर्जनता का प्रतिशोध लेते, हंसी, आमोद और नाना विषयों की आलोचना में समय बिताते। लेकिन ऐसे अवसरों पर अपरिचितों के साथ बात करने की सुविधा नहीं होती इसलिए मैं अपने भाई बारीन्द्र और अविनाश को छोड़ और किसी से भी ज्यादा बात न करता, उनका हंसी-मजाक, उनकी बातें सुनता पर स्वयं उसमें भाग न लेता। किन्तु एक आदमी बातचीत में मेरे पास खिसक आते। वे थे भावी approver (मुखबिर) नरेन्द्रनाथ गोस्वामी। दूसरे लड़कों की तरह उनका स्वभाव न शान्त था न शिष्ट। वे थे साहसी और लघुचेता एवं चरित्र, वाणी और कर्म में असंयत। पकड़े जाने के समय नरेन गोसाईं ने अपना स्वाभाविक साहस और प्रगल्भता दिखायी थी, लेकिन लघुचेता होने के कारण कारावास का थोड़ा-सा भी दुःख और असुविधा सहन करना उनके लिए असाध्य हो उठा था। वे थे जमींदार के बेटे अतः

सुख, विलास और दुर्नीति में पले, वे कारागृह के कठोर संयम और तपस्या से अत्यन्त कातर हो गये थे, और यह भाव सबके सामने प्रकट करने में भी कुण्ठित नहीं हुए। जिस किसी भी उपाय से इस यन्त्रणा से मुक्त होने की उत्कट लालसा उनके मन में दिन-दिन बढ़ने लगी। पहले उन्हें यह आशा थी कि अपनी स्वीकारोक्ति का प्रत्याहार कर वे यह प्रमाणित कर सकेंगे कि पुलिस ने शारीरिक यन्त्रणा देकर दोष स्वीकार कराया था। उन्होंने हमें बताया कि उनके पिता इस तरह के झूठे गवाह जुटाने के लिए कृतसंकल्प थे। किन्तु थोड़े दिनों में ही और एक भाव सामने आने लगा। उनके पिता और एक मुखतार उनके पास बार-बार जेल में आने-जाने लगे, अन्त में जासूस शमसुल आलम भी उनके पास आ बहुत देर तक गुप-चुप बातें करने लगे। ऐसे समय हठात् गोसाईं के कौतुहल और प्रश्न करने की प्रवृत्ति देख बहुतों के मन में सन्देह का उद्रेक हुआ। भारतवर्ष के बड़े-बड़े आदमियों के साथ उनका परिचय या घनिष्ठता थी कि नहीं, गुप्त समिति को किस-किस ने आर्थिक सहायता दे उसका पोषण किया, समिति के और कौन-कौन सदस्य बाहर या भारत के अन्यान्य प्रदेशों में थे, अब कौन समिति का कार्य चलायेंगे, शाखा-समिति कहां है इत्यादि अनेक छोटे-बड़े प्रश्न बारीन्द्र और उपेन्द्र से पूछते। गोसाईं की यह ज्ञानतृष्णा की बात अचिरात् सबके कर्णगोचर हुई और शमसुल आलम के साथ उनकी घनिष्ठता की बात भी अब गोपनीय प्रेमालाप न रह open secret (खुला रहस्य) हो उठी। इसे लेकर खूब आलोचना होती और किसी-किसी ने यह भी लक्ष्य किया कि हमेशा पुलिस-दर्शन के बाद ही इस तरह के नये-नये प्रश्न गोसाईं के मन में चक्कर काटते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि उन्हें इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। जब पहले-पहल आसामियों में यह बात प्रचारित होने लगी तब गोसाईं ने स्वयं स्वीकार किया था कि पुलिस उनके

पास आ "सरकारी गवाह" बन जाने के लिए उन्हें नाना उपायों से समझाने की चेष्टा कर रही है। कोर्ट में उन्होंने मुझसे एक बार यह बात कही थी। मैंने उनसे पूछा था, "आपने क्या उत्तर दिया।" वे बोले, "मैं क्या मान लूंगा! मानने पर भी भला मैं क्या जानता हूं जो उनकी इच्छानुसार साक्ष्य दूंगा?" उसके कुछ दिन बाद उन्होंने फिर से जब इस बात का उल्लेख किया तो देखा कि यह बात बहुत आगे बढ़ चुकी है। जेल में Identification parade (पहचान-परेड) के समय मेरी बगल में गोसाईं खड़े थे, तब उन्होंने मुझसे कहा : "पुलिस केवल मेरे पास ही आती है।" मैंने उपहास करते हुए कहा, "आप यह बात कह क्यों नहीं देते कि सर ऐन्डू फ्रेज़र गुप्त समिति के प्रधान पृष्ठपोषक थे, इससे उनका परिश्रम सार्थक होगा।" गोसाईं बोले, "ऐसी बात तो मैंने कह ही दी है। मैं उन्हें कह चुका हूं कि सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी हैं हमारे head (प्रधान) और मैंने उन्हें भी एक बार बम दिखाया है।" स्तम्भित हो मैंने उनसे पूछा, "यह बात कहने की जरूरत क्या थी?" गोसाईं बोले, "मैं... का श्राद्ध करके रहूंगा। उस तरह की और भी बहुत-सी खबरें मैंने दी है। मरें साले corroboration (प्रमाण) खोजते-खोजते। क्या पता, इस उपाय से, मुकद्दमा फिस ही हो जाये?" इसके उत्तर में मैंने केवल इतना कहा था, "ऐसी शरारत से बाज़ आइये। उनके साथ चालाकी करते-करते खुद ही ठगे जायेंगे।" पता नहीं गोसाईं की यह बात कहां तक सच थी। और सब आसामियों की यह राय थी कि हमारी आंखों में धूल झोंकने के लिए उन्होंने ऐसा कहा था। मेरा ख्याल था कि तब तक गोसाईं approver (मुखबिर) होने के लिए पूर्णतया कृतनिश्चय नहीं थे, यह ठीक है कि इस विषय में वे बहुत आगे बढ़ चुके थे, किन्तु पुलिस को ठग उनका केस मिट्टी कर देने की आशा भी उन्हें थी। चालाकी और असदुपाय से कार्यसिद्धि ही दुष्प्रवृत्ति की स्वाभाविक प्रेरणा है।

तभी से समझ गया था कि गोसाईं पुलिस के वश हो सच झूठ उन्हें जो भी चाहिये वह कह अपने को बचाने की चेष्टा करेंगे। एक नीच स्वभाव का और भी निम्नतर दुष्कर्म की ओर अधःपतन हमारी आंखों के सामने नाटक की तरह अभिनीत होने लगा। मैंने लक्ष्य किया कि किस तरह गोसाईं का मन दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है, उनके मुख, भावभंगिमा और बातचीत में भी परिवर्तन हो रहा है। विश्वासघात कर अपने संगी-साथियों का सर्वनाश करने के लिए वे जो कुछ जुटा रहे थे उसके समर्थन के लिए क्रम से नाना अर्द्धनैतिक और राजनीतिक युक्तियां बाहर करने लगे। ऐसी interesting psychological study (मनोरञ्जक मनोवैज्ञानिक अध्ययन) प्रायः सहज ही हाथ नहीं लगती।

शुरू में किसी ने भी गोसाईं को यह पता न लगने दिया कि सभी उनकी अभिसन्धि भांप गये हैं। वे भी इतने नासमझ निकले कि बहुत दिन तक कुछ भी न समझ सके, वे समझते थे कि मैं खूब छिपे-छिपे पुलिस की मदद कर रहा हूं। किन्तु कुछ दिन बाद यह हुकुम हुआ कि हमें अब और निर्जन कारावास में न रख एक साथ रखा जायेगा तब, उस नूतन व्यवस्था से, रात-दिन पारस्परिक मेल-जोल और बातचीत से कुछ भी ज्यादा दिन छिपा न रहा। उन्हीं दिनों दो-एक लड़कों के साथ गोसाईं का झगड़ा हुआ, उनकी बातों से और सबके अप्रीतिकर व्यवहार से गोसाईं समझ गये कि उनकी अभिसन्धि किसी के लिए भी अज्ञात नहीं रही। जब गोसाईं गवाही देते तो कुछ एक अंग्रेजी अखबारों में यह खबर छपती कि आसामी इस अप्रत्याशित घटना से चमत्कृत और उत्तेजित हुए। कहना न होगा, यह थी रिपोर्टरों की कोरी कल्पना। बहुत दिन पहले ही सब जान गये थे कि इस तरह की गवाही दी जायेगी। यहां तक कि किस दिन कौन-सी साक्षी दी

जायेगी उसका भी पता था। ऐसे समय एक आसामी गोसाईं के पास जाकर बोले, "देखो भाई, अब और नहीं सहा जाता, मैं भी approver (मुखबिर) बनूंगा, तुम शमसुल आलम को कहो कि मेरी रिहाई की भी व्यवस्था करें।" गोसाईं राजी हो गये। कुछ दिन बाद उनसे कहा : इस विषय में गवर्नमेंट की चिट्ठी आयी है कि इस आसामी के निवेदन के अनुकूल निर्णय (favourable consideration) की सम्भावना है। यह कह गोसाईं ने उन्हें उपेन आदि से कुछ इस तरह की आवश्यक बातें निकलवाने को कहा, जैसे—गुप्त समिति की शाखा कहां थी, कौन थे उसके नेता इत्यादि। नकली approver आमोदप्रिय एवं रसिक आदमी थे, उन्होंने उपेन्द्रनाथ के साथ परामर्श कर गोसाईं को कुछ एक कल्पित नाम जता दिये कि मद्रास में विश्वम्भर पिल्लै, सातारा में पुरुषोत्तम नाटेकर, बम्बई में प्रोफेसर भट्ट और बड़ौदा में कृष्णाजीराव भाऊ थे इस गुप्त समिति की शाखा के नेता। गोसाईं ने आनन्दित हो यह विश्वासयोग्य संवाद पुलिस को दे दिया। पुलिस ने भी मद्रास में कोना-कोना छान मारा, बहुत-से छोटे-बड़े पिल्लै मिले, लेकिन एक भी पिल्लै विश्वम्भर या अर्द्ध विश्वम्भर तक न मिला, सातारा में पुरुषोत्तम नाटेकर भी अपना अस्तित्व घने अन्धकार में छिपाये रहे, बम्बई में एक प्रोफेसर भट्ट मिल गये, किन्तु वे थे निरीह राजभक्त सज्जन, उनके पीछे कोई गुप्त समिति होने की सम्भावना नहीं थी। फिर भी, गोसाईं ने गवाही देते समय, उपेन से पहले कभी सुनी बात के आधार पर कल्पना-राज्य के निवासी विश्वम्भर पिल्लै इत्यादि षड्यन्त्र के महारथियों की नॉर्टन के श्रीचरणों में बलि चढ़ा अपनी अद्भुत prosecution theory (अभियोग सिद्धान्त) को पुष्ट किया। वीर कृष्णाजीराव भाऊ को लेकर पुलिस ने और एक रहस्य रचा। उन लोगों ने बागान से बड़ौदा के कृष्णाजीराव देशपाण्डे के नाम किसी "घोष" द्वारा प्रेषित टेलीग्राम की नकल प्रस्तुत की। उस नाम

का कोई आदमी था कि नहीं, बड़ौदावासियों को इसका कोई सन्धान नहीं मिला, लेकिन चूंकि सत्यवादी गोसाईं ने बड़ौदावासी कृष्णाजीराव भाऊ की बात कही है तो निश्चय ही कृष्णाजीराव भाऊ और कृष्णाजीराव देशपाण्डे हैं एक ही व्यक्ति। और कृष्णाजीराव देशपाण्डे हों या न हों, हमारे श्रद्धेय बन्धु केशवराव देशपाण्डे का नाम चिट्ठी-पत्री में मिला था। इसलिए निश्चय ही कृष्णाजीराव भाऊ और कृष्णाजीराव देशपाण्डे एक ही व्यक्ति हैं। इससे यह प्रमाणित हो गया कि केशवराव देशपाण्डे हैं गुप्त षड्यन्त्र के एक प्रधान पण्डा। ऐसे सब असाधारण अनुमानों पर प्रतिष्ठित थी नॉर्टन साहब की वह विख्यात theory (परिकल्पना)।

गोसाईं की बात का विश्वास करने से यह भी विश्वास करना होगा कि उन्हीं के कहने से हमारा निर्जन कारावास खतम हुआ एवं हमें इकट्ठे रहने का हुकुम मिला। उन्होंने बताया कि पुलिस ने उन्हें सबके बीच में रख षड्यन्त्र की गुप्त बातें निकलवाने के लिए यह व्यवस्था की है। गोसाईं नहीं जानते थे कि पहले ही सबने उनके नूतन व्यवसाय की गन्ध पा ली है, इसलिए कौन षड्यन्त्र में लिप्त हैं, शाखा समिति कहां है, कौन पैसे देते या सहायता करते हैं, अब कौन गुप्त समिति का काम चलायेंगे आदि ऐसे अनेक प्रश्न पूछने लगे। इन सब प्रश्नों के उन्हें कैसे उत्तर मिले इसका दृष्टान्त मैंने ऊपर दिया है। लेकिन गोसाईं की अधिकांश बातें ही झूठी थीं। डॉ. डैली ने हमें बताया था कि उन्हींने इमर्सन साहब से कह-सुनकर यह परिवर्तन कराया था। सम्भवतः डैली की बात ही सच है; हो सकता है कि इस नूतन व्यवस्था से अवगत होने के बाद पुलिस ने ऐसे लाभ की कल्पना की हो। जो भी हो, इस परिवर्तन से मुझे छोड़ अन्य सबको परम आनन्द मिला, मैं उस समय लोगों से मिलने-जुलने को अनिच्छुक था, तब मेरी साधना खूब जोरों से चल रही थी। समता, निष्कामता

और शान्ति का कुछ-कुछ आस्वाद पाया था; किन्तु तब तक यह भाव दृढ़ नहीं हुआ था। लोगों के साथ मिलने से, दूसरों के चिन्तनस्रोत का आघात मेरे अपक्व नवीन चिन्तन पर पड़ते ही इस नये भाव का ह्रास हो सकता है, बह जा सकता है। और सचमुच यही हुआ। उस समय नहीं जानता था कि मेरी साधना की पूर्णता के लिए विपरीत भाव के उद्रेक का जागना आवश्यक है, इसीलिए अन्तर्यामी ने हठात् मुझे मेरी प्रिय निर्जनता से वञ्चित कर उद्दाम रजोगुण के स्रोत में बहा दिया। दूसरे सभी आनन्द में अधीर हो उठे। उस रात जिस कमरे में हेमचन्द्र दास, शचीन्द्र सेन इत्यादि गायक थे वह कमरा सबसे बड़ा था, अधिकतर आसामी वहीं एकत्रित हुए थे और रात के दो-तीन बजे तक कोई भी सो न सका। सारी रात हंसी के ठहाके, गाने का अविराम स्रोत, इतने दिन की रुद्ध कथा-वार्ता वर्षा-ऋतु की वन्या की तरह बहती रहने से नीरव कारागार कोलाहल से ध्वनित हो उठा। हम सो गये लेकिन जितनी बार नींद टूटी उतनी ही बार सुनी समान वेग से चलती हुई वही हंसी, वही गाने, वही गप्पें। अन्तिम प्रहर में वह स्रोत क्षीण हो गया, गायक भी सो गये। हमारा वार्ड नीरवता में डूब गया।...

कारागृह और स्वाधीनता

लगभग सारी मनुष्यजाति ही है बाह्य अवस्था की दास, स्थूल जगत् की अनुभूति में ही आबद्ध। सब मानसिक क्रियाएं इस बाह्य अनुभूति का ही आश्रय लेती हैं, बुद्धि भी स्थूल की संकीर्ण सीमा लांघने में अक्षम है; प्राण के सुख-दुःख हैं बाह्य घटना की प्रतिध्वनिमात्र। यह आधिपत्य शरीर के दासत्व से पैदा होता है। उपनिषद् में कहा गया है, "जगत्-स्रष्टा स्वयम्भू ने शरीर के सब द्वारों को बहिर्मुखी करके गढ़ा है इसलिए सबकी दृष्टि बहिर्जगत् में आबद्ध है, अन्तरात्मा को कोई भी नहीं देखता। वे धीर प्रकृति महात्मा विरल हैं जिन्होंने अमृत की लालसा से चक्षुओं को भीतर की ओर फिरा आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किये हैं।" हम भी साधारणतः जिस बहिर्मुखी स्थूल दृष्टि से मनुष्यजाति का जीवन देखते हैं उस दृष्टि से शरीर ही है हमारा मुख्य सम्बल। यूरोप को हम जितना भी जड़वादी क्यों न कहें पर असल में मनुष्य-मात्र ही है जड़वादी। शरीर है धर्म-साधन का उपाय, हमारा बहुअश्व-युक्त रथ, जिस देह-रथ में आरोहण कर हम संसार-पथ पर दौड़ लगाते हैं। किन्तु हम देह का अयथार्थ प्राधान्य स्वीकार कर देहात्मक बुद्धि को ऐसे प्रश्रय देते हैं कि बाह्य कर्म और बाह्य शुभाशुभ द्वारा सम्पूर्णतया बंधे रह जाते हैं। इस अज्ञान का फल है जीवनव्यापी दासत्व और पराधीनता। सुख-दुःख, शुभाशुभ, सम्पद्-विपद् हमारी मानसिक अवस्था को अपना अनुयायी बनाने के लिए सचेष्ट तो होते ही हैं, हम भी कामना का ध्यान करते-करते उस स्रोत में बह जाते हैं। सुख की लालसा से, दुःख के भय से पराश्रित हो जाते हैं, पर-दत्त सुख और दुःख को ग्रहण कर अशेष कष्ट और लांछना भोगते हैं। क्योंकि, प्रकृति हो या मनुष्य, जो हमारे शरीर पर थोड़ा भी आधिपत्य जमा सकता है या अपनी शक्ति को अधिकार-क्षेत्र में ला

सकता है हमें उसीके प्रभाव के अधीन रहना होता है। इसका चरम दृष्टान्त है शत्रुग्रस्त या काराबद्ध-अवस्था। किन्तु जो बन्धु-बान्धवों से वेष्टित हो, स्वाधीनता से मुक्त आकाश में विचरण करते हैं, काराबद्धों की तरह उनकी भी यही दुर्दशा है। शरीर ही है कारागृह और देहात्मक-बुद्धिरूप अज्ञानता है कारारूपी शत्रु।

यह कारावास है मनुष्यजाति की चिरन्तन अवस्था। दूसरी ओर साहित्य और इतिहास के प्रत्येक पन्ने पर देखने में आता है स्वाधीनता पाने के लिए मनुष्य जाति का अदमनीय उच्छ्वास और प्रयास। जैसे राजनीतिक या सामाजिक क्षेत्र में वैसे ही व्यक्तिगत जीवन में युग-युग में हुई है यही चेष्टा। आत्मसंयम, आत्मनिग्रह, सुख-दुःख वर्जन, Stoicism (स्टोइकवाद), Epicureanism (सुखवाद), Asceticism (वैराग्य), वेदान्त, बौद्धधर्म, अद्वैतवाद, मायावाद, राजयोग, हठयोग, गीता, ज्ञानमार्ग, भक्तिमार्ग, कर्ममार्ग आदि नाना पन्थों का है एक ही गम्यस्थल। उद्देश्य—देह-विजय, स्थूल के आधिपत्य का वर्जन, आन्तरिक जीवन की स्वाधीनता। पाश्चात्य विज्ञानविदों ने यह सिद्धान्त बनाया है कि स्थूल जगत् के सिवा दूसरा कोई जगत् नहीं, स्थूल पर प्रतिष्ठित है सूक्ष्म, सूक्ष्म अनुभव है स्थूल अनुभव की प्रतिकृतिमात्र, व्यर्थ है मनुष्य का स्वाधीनता-प्रयास, धर्मदर्शन और वेदान्त हैं अलीक कल्पनाएं, सम्पूर्ण भूतप्रकृति-आबद्ध हमारा वह बन्धन-मोचन या भूत-प्रकृति की सीमा का उल्लंघन है मिथ्या चेष्टा। किन्तु मानव हृदय के ऐसे गूढ़तर स्तर में निहित है यह आकांक्षा कि हजार युक्तियां भी इसका उन्मूलन करने में असमर्थ हैं। मनुष्य विज्ञान के सिद्धान्त से कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकता। चिरकाल से मनुष्य अस्पष्टतः अनुभव करता आ रहा है कि स्थूलजय में समर्थ सूक्ष्म वस्तु उसके अभ्यन्तर में दृढ़ता से वर्तमान है, सूक्ष्ममय अधिष्ठाता हैं नित्यमुक्त, आनन्दमय पुरुष। उस नित्यमुक्ति और निर्मल आनन्द को पाना है धर्म का उद्देश्य।

धर्म का यह जो उद्देश्य है, विज्ञान-कल्पित Evolution (विकास) का उद्देश्य भी वही है। विचारशक्ति और उसका अभाव पशु और मनुष्य का प्रकृत अन्तर नहीं। पशु में विचारशक्ति है; लेकिन पशुदेह में उसका उत्कर्ष नहीं होता। पशु और मनुष्य में असली भेद यह है कि शरीर का सम्पूर्ण दासत्व स्वीकार करना है पाशविक अवस्था, और शरीरजय और आन्तरिक स्वाधीनता की चेष्टा ही है मनुष्यत्व का विकास। यह स्वाधीनता ही है धर्म का प्रधान उद्देश्य, इसे ही कहते हैं मुक्ति। इस मुक्ति के लिए हम अन्तःकरणस्थ मनोमय प्राण-शरीर-नेता को ज्ञान द्वारा पहचानने या कर्म और भक्ति द्वारा प्राण, मन और शरीर को अर्पित करने के लिए सचेष्ट होते हैं। गीता का यह प्रधान उपदेश, **योगस्थः कुरु कर्माणि,** (योग में स्थित होकर कर्म करो) ही यह स्वाधीनता है। आन्तरिक सुख-दुःख जब बाह्य शुभाशुभ, सम्पद-विपद् का आश्रय न लेकर स्वयं-जात, स्वयं-प्रेरित और स्व-सीमाबद्ध होते हैं तब मनुष्य की साधारण अवस्था से विपरीत अवस्था होती है, उस समय बाह्य जीवन को आन्तरिक जीवन का अनुयायी बनाया जा सकता है, कर्म-बन्धन शिथिल हो सकता है। गीता के आदर्श पुरुष कर्मफल में आसक्ति त्याग पुरुषोत्तम में कर्मसंन्यास करते हैं। वे **दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः,** आन्तरिक स्वातन्त्र्य प्राप्त कर आत्मरत और आत्मसन्तुष्ट हो रहते हैं। वे साधारण लोगों की तरह सुख की लालसा से, दुःख के भय से किसी पर आश्रित नहीं होते, परदत्त सुख-दुःख ग्रहण नहीं करते, अतः कर्मों के भोग नहीं भोगते। वरन् महासंयमी, महाप्रतापान्वित देवासुर युद्ध में राग, भय, क्रोध से अतीत महारथी हो भगवत्प्रेरित जो कर्मयोगी राष्ट्रविप्लव, या प्रतिष्ठित राज्य, धर्मसमाज की रक्षा कर निष्काम भाव से भगवत्कर्म सुसम्पन्न करते हैं, वे हैं गीता के श्रेष्ठ पुरुष।

आधुनिक युग में हम खड़े हैं नूतन और पुरातन के सन्धिस्थल पर। मनुष्य निरन्तर अपने गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर हो रहा है, कभी-कभी समतल भूमि को त्याग ऊपर आरोहण करना होता है, और आरोहण के समय राज्य, सभा, धर्म और ज्ञान में विप्लव होता है। आजकल स्थूल से सूक्ष्म की ओर आरोहण करने का प्रयास चल रहा है। पाश्चात्य वैज्ञानिक पण्डितों द्वारा स्थूल जगत् की सांगोपांग परीक्षा और नियम-निर्धारण से आरोहण मार्ग की चारों ओर की समतल भूमि परिष्कृत हो गयी है। सूक्ष्म जगत् के विशाल राज्य में पाश्चात्य ज्ञानियों का प्रथम पदक्षेप हो रहा है, बहुतों का मन उस राज्य को जीतने की आशा से प्रलुब्ध हो उठा है। इसके अलावा दूसरे लक्षण भी दिखायी दे रहे हैं—जैसे थोड़े दिनों में थियोसोफ़ी का विस्तार, अमेरिका में वेदान्त का आदर, पाश्चात्य दर्शनशास्त्र और चिन्तनप्रणाली में परोक्ष रूप से भारतवर्ष का कुछ आधिपत्य आदि। किन्तु सर्वश्रेष्ठ लक्षण है भारत का आकस्मिक और आशातीत उत्थान। भारतवासी जगत् के गुरु-पद पर अधिकार कर नये युग का प्रवर्तन करने के लिए उठ रहे हैं। उनकी सहायता से वञ्चित रहने पर पाश्चात्य-गण उन्नति करने की चेष्टा में सिद्धकाम नहीं हो सकेंगे। जैसे आन्तरिक जीवन के विकास के सर्व-प्रधान साधन-स्वरूप ब्रह्म-ज्ञान, तत्त्वज्ञान और योगाभ्यास में भारत को छोड़ दूसरे किसी देश का उत्कर्ष नहीं हुआ उसी तरह मनुष्यजाति के लिए आवश्यक चित्त-शुद्धि, इन्द्रियसंयम, ब्रह्मतेज, तपःक्षमता और निष्काम कर्मयोग-शिक्षा हैं भारत की ही सम्पत्ति। बाह्य सुख-दुःख की उपेक्षा कर आन्तरिक स्वाधीनता अर्जित करना भारतवासी के लिए ही साध्य है, निष्काम कर्म में भारतवासी ही समर्थ हैं, अहंकार-वर्जन और कर्म में निर्लिप्तता उन्हीं की शिक्षा और सभ्यता का चरम उद्देश्य होने के कारण जातीय चरित्र में बीज-रूप में निहित है।

इस बात की यथार्थता मैंने पहले अलीपुर जेल में अनुभव की। इस जेल में अधिकतर चोर, डकैत और हत्यारे रहते हैं। यद्यपि कैदियों के साथ हमारी बातचीत निषिद्ध थी तथापि व्यवहार में यह नियम पूरी तरह नहीं पाला जाता था, इसके अलावा रसोइये, पानीवाले और झाड़ू देनेवाले मेहतर आदि के साथ सम्पर्क हुए बिना काम नहीं चलता था, बहुत बार उनके साथ अबाध वाक्यालाप होता। जो मेरे साथ उसी अपराध में पकड़े गये थे वे भी "नृशंस हत्यारों का दल" आदि दुःश्राव्य विशेषणों से कलंकित और निन्दित होते। यदि भारतवासी के चरित्र को कहीं घृणा की दृष्टि से देखना हो, यदि किसी अवस्था में उसके निकृष्ट, अधम और जघन्य भाव से परिचय पाना सम्भव हो तो अलीपुर जेल ही है वह स्थान और अलीपुर का कारावास ही है वह निकृष्ट, हीन अवस्था। इस स्थान में, ऐसी अवस्था में मैंने बारह महीने काटे। इन बारह महीनों के अनुभव का फल—भारतवासियों की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में दृढ़ धारणा, मनुष्यचरित्र के प्रति द्विगुण भक्ति और स्वदेश एवं मनुष्यजाति की भावी उन्नति और कल्याण की दसगुनी आशा ले कर्म-क्षेत्र में लौटा हूं। यह मेरे स्वभावजात Optimism (आशावाद) या अतिरिक्त विश्वास का फल नहीं। श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल एक बार जेल में यह अनुभव कर आये थे, अलीपुर जेल के भूतपूर्व डॉक्टर डैली साहब भी इसका समर्थन करते थे। डैली साहब थे मानव-चरित्र से अभिज्ञ, सहृदय और विचक्षण व्यक्ति, मानव-चरित्र की सारी निकृष्ट और जघन्य वृत्तियां प्रतिदिन उनके सामने विद्यमान रहतीं, फिर भी वे मुझसे कहते, "भारत के सज्जन या नीच लोगों को, समाज के सम्भ्रान्त व्यक्ति या जेल के जितने भी कैदियों को देखता-सुनता हूं उससे मेरी यह धारणा दृढ़ हुई है कि चरित्र और गुण में तुम लोग हमसे बहुत ऊंचे हो। इस देश के कैदियों और यूरोप के कैदियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इन

युवकों को देखकर मेरी यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी है। इनका आचरण, चरित्र और नाना सद्‌गुण देखते हुए कौन कल्पना कर सकता है कि ये anarchist (अराजकतावादी) या हत्यारे हैं। उनमें क्रूरता, उद्दाम-भाव, अधीरता या धृष्टता थोड़ी भी नहीं पाता, पाता हूं सब उल्टे गुण ही।" निस्सन्देह चोर और डाकू जेल में साधु-संन्यासी नहीं बन जाते। अंग्रेजों की जेल चरित्र सुधारने की जगह नहीं, साधारण कैदियों के लिए तो उल्टे चरित्रहानि और मनुष्यत्व के नाश का साधन है। जो चोर, डाकू और खूनी थे, वे चोर, डाकू और खूनी ही रहते हैं, जेल में चोरी करते हैं, कड़ी पाबंदियों के बावजूद नशा करते हैं, धोखा देते हैं। पर इससे क्या, भारतीय का मनुष्यत्व जाकर भी नहीं जाता। सामाजिक अवनति के कारण पतित, मनुष्यत्व-नाश के फलस्वरूप निष्पेषित और बाहर कालिमा, कदर्यभाव, कलंक औ' विकृति, फिर भी भीतर वही लुप्तप्राय मनुष्यत्व भारतवासी के मज्जागत सद्‌गुण में छिपा आत्मरक्षा करता है, बार-बार उसकी बातों में और आचरण में प्रकट होता है। जो थोड़ा-सा ऊपरी कीचड़ देख घृणा से मुंह फेर लेते हैं, केवल वे ही कह सकते हैं कि हमने इनमें मनुष्यत्व लेशमात्र भी नहीं देखा। किन्तु जो साधुता का अहंकार त्याग अपनी सहजसाध्य स्थिर दृष्टि से निरीक्षण करते हैं वे कभी उनकी हां में हां नहीं मिलायेंगे। श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल ने बक्सर जेल में चोर-डाकुओं के बीच में ही सर्वघट में नारायण के दर्शन कर छः मास के कारावास के बाद उत्तरपाड़ा की सभा में मुक्त कण्ठ से इस बात को स्वीकारा था। मैं भी अलीपुर जेल में ही हिन्दू धर्म के इस मूलतत्त्व को हृदयंगम कर पाया, नरदेह में सर्वप्रथम चोर, डाकू और खूनी में नारायण को उपलब्ध किया।

इस देश में सैकड़ों निरपराध व्यक्ति दीर्घकाल तक जेल-रूपी नरकवास के भोग से पूर्वजन्मार्जित दुष्कर्म के फल को हल्का कर

अपना स्वर्ग-पथ परिष्कृत कर रहे हैं। किन्तु साधारण पाश्चात्यवासी जो धर्मभाव से पूत और देवभावापन्न नहीं हैं वे ऐसी परीक्षा में कहां तक उत्तीर्ण होते हैं इसका सहज अनुमान जो पश्चिम में रह चुके हैं या जिन्होंने पश्चिमी चरित्र-प्रकाशक साहित्य पढ़ा है, वे ही कर सकते हैं। ऐसे स्थलों में या तो उनका निराशा-पीड़ित, क्रोध और दुःख के अश्रुजल से प्लावित हृदय पार्थिव नरक के घोर अन्धकार में एवं सहवासियों के संसर्ग में पड़ उनकी क्रूरता और नीचवृत्ति का आश्रय लेता है;—या दुर्बलता के निरतिशय निष्पेषण से बल-बुद्धिहीन हो केवल मनुष्य का नष्टावशेष बच रहता है।

अलीपुर के एक निरपराधी की बात सुनाता हूं। इस व्यक्ति को डकैती में शामिल होने के कारण दस साल के सश्रम कारावास का दण्ड मिला था। जाति का था ग्वाला, अशिक्षित, लिखने-पढ़ने के पास न फटकता, धर्म और सम्बन्ध के नाते उसमें थी भगवान् पर आस्था और आर्यशिक्षा-सुलभ धैर्य और अन्यान्य सद्‌गुण। इस वृद्ध का भाव देख मेरा विद्या और सहिष्णुता का अहंकार चूर्ण हो गया। वृद्ध के नयनों में सदा विराजता प्रशान्त, सरल मैत्रीभाव और मुंह में सर्वदा अमायिक, प्रीतिपूर्ण आलाप। कभी-कभी अपने निरपराध होने पर भी कष्टभोग की बात कहते, स्त्री-पुत्र के बारे में बताते, कब भगवान् कारा से मुक्ति दिला स्त्री-पुत्र के मुख का दर्शन करायेंगे, यह भाव भी प्रकाशित करते, लेकिन कभी भी उन्हें निराश और अधीर नहीं देखा। भगवान् की कृपा के भरोसे धीर भाव से जेल का सब काम सम्पन्न करते हुए दिन काट रहे थे। वृद्ध की सारी चेष्टाएं और भावनाएं अपने लिए नहीं थीं, थीं दूसरों की सुख-सुविधाओं के लिए। उनकी हर बात से झलकती थी दया और दुःखियों के प्रति सहानुभूति। पर-सेवा था उनका स्वभाव-धर्म। नम्रता में ये सारे सद्‌गुण और भी फूट उठे थे। अपने से सहस्र गुना उच्च हृदय देख इस नम्रता के

सामने मैं सर्वदा लज्जित हो जाता, वृद्ध से सेवा कराते संकोच होता था, लेकिन वे छोड़ते नहीं थे, वे सदा ही मेरे सुख-स्वस्ति के लिए चिन्तित रहते। जैसा मेरे पर वैसा ही सब पर—विशेषतया निरपराधों और दुःखीजनों के प्रति उनकी दयादृष्टि और विनीत सेवा-सम्मान और भी अधिक था। तिस पर भी चेहरे पर और आचरण में कैसा एक स्वाभाविक और प्रशान्त गाम्भीर्य और महिमा थी! देश के प्रति भी इनका यथेष्ट अनुराग था। इस वृद्ध कैदी की दया-दाक्षिण्यपूर्ण श्वेतश्मश्रुमण्डित सौम्यमूर्ति चिरकाल मेरे स्मृति-पट पर अंकित रहेगी। इस अवनति के समय भी भारत के किसानों में—जिन्हें हम अशिक्षित और छोटी जात कहते हैं,—ऐसी हिन्दू-सन्तानें मिलती हैं, इसीलिए है भारत का भविष्य आशाजनक। शिक्षित युवक-मण्डली और अशिक्षित कृषकवर्ग—इन दो वर्गों में ही निहित है भारत का भविष्य, इनके मिलन से ही गठित होगी भावी आर्यजाति।

ऊपर एक अशिक्षित खेतिहर की कहानी सुनायी, अब दो शिक्षित युवकों की कहानी सुनाता हूं। इन्हें सात साल का सश्रम कारावास का दण्ड मिला था। ये थे हैरिसन रोड के दो कविराज, नगेन्द्रनाथ और धरणी। ये भी जिस शान्त भाव से, सन्तुष्ट मन से इस आकस्मिक विपत्ति, इस अन्यायी राजदण्ड को सह रहे थे, उसे देख आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता था। कभी भी उनके मुख से क्रोधपूर्ण या असहिष्णुता-प्रकाशक एक भी बात नहीं सुनी। जिनके दोष से जेलरूपी नरक में यौवन काटना पड़ा था उनके प्रति जरा-सा भी क्रोध, तिरस्कार का भाव या विरक्ति तक का कोई लक्षण कभी नहीं देखा। वे थे आधुनिक शिक्षा के गौरवस्थल, पाश्चात्य भाषा और पाश्चात्य विद्या से अनभिज्ञ। मातृभाषा ही था इनका सम्बल, लेकिन अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त लोगों में उनके तुल्य कम ही लोग देखे। दोनों ने ही मनुष्य या विधाता के आगे शिकायत या नालिश न कर सहास्य-वदन नतमस्तक दण्ड ग्रहण

कर लिया था। दोनों ही भाई थे साधक लेकिन विभिन्न प्रकृति के। नगेन्द्र थे धीर प्रकृति, गम्भीर और बुद्धिमान्, हरिकथा और धर्म-चर्चा में अत्यन्त रुचि रखनेवाले। जब हमें निर्जन कारावास में रखा गया था तब जेल के अधिकारियों ने जेल की कड़ी मशक्कत के बाद हमें पुस्तकें पढ़ने की अनुमति दी थी। नगेन्द्र की इच्छा थी भगवद्‌गीता पढ़ने की, मिली बाइबल। बाइबल पढ़कर उनके मन में कैसे-कैसे भाव उठते, कठघरे में बैठकर सब मुझे बताते। नगेन्द्र ने गीता नहीं पढ़ी, किन्तु आश्चर्य! बाइबल की कथा न कह वे गीता के श्लोकों का अर्थ बोल रहे थे—कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण-मुख से निःसृत भगवद्‌गुणात्मक सारी महती उक्तियां उसी वासुदेव के मुखकमल से इस अलीपुर के कठघरे में फिर से निःसृत हो रही हैं। गीता न पढ़ी होने पर बाइबल में गीता का समतावाद, कर्मफल-त्याग, सर्वत्र ईश्वर-दर्शन इत्यादि भाव उपलब्ध करना सामान्य साधना का लक्षण नहीं। धरणी नगेन्द्र के समान बुद्धिमान् नहीं थे, लेकिन थे विनीत, कोमल प्रकृति और स्वभाव से ही भक्त। वे सदा ही मातृध्यान में विभोर रहते, उनके चेहरे पर प्रसन्नता, सरल हंसी और कोमल भक्ति-भाव देख जेल के जेलत्व की उपलब्धि कठिन हो जाती थी। इन्हें देख कौन कह सकता है कि बंगाली हीन और अधम हैं? यह शक्ति, यह मनुष्यत्व, यह पवित्र अग्नि बस छिपी पड़ी है राख के ढेर में।

ये दोनों ही थे निरपराध। बिना दोष के काराबद्ध होने पर भी निज गुणों या शिक्षा के बल पर बाह्य सुख-दुःख का आधिपत्य अस्वीकार कर आन्तरिक जीवन की स्वाधीनता की रक्षा करने में समर्थ थे। किन्तु जो अपराधी हैं, उनमें भी जातीय चरित्र के सद्‌गुण विकसित होते। मैं बारह महीने अलीपुर में था, दो-एक को छोड़ जितने भी कैदी, चोर-डाकू और खूनियों के साथ हमारा सम्पर्क हुआ

सबसे ही हम सद्व्यवहार और अनुकूलता पाते। बल्कि आधुनिक शिक्षा से दूषित हम लोगों में इन सब गुणों का अभाव देखा जाता है। आधुनिक शिक्षा के अनेक गुण हो सकते हैं किन्तु सौजन्य और निःस्वार्थ परसेवा उन गुणों में नहीं आते। जो दया और सहानुभूति हैं आर्यशिक्षा के मूल्यवान् अंग उन्हें इन चोर-डाकुओं में भी देखता। मेहतर, भंगी और पानीवाले को बिना दोष के हमारे साथ-साथ निर्जन कारावास का दुःख-कष्ट थोड़ा-बहुत भोगना पड़ता, लेकिन उन्होंने इससे एक दिन भी हमारे ऊपर असन्तुष्टि या क्रोध नहीं दिखाया। देशीय जेलर के सामने भले ही कभी-कभी अपना दुखड़ा रो लेते थे लेकिन हमारी कारामुक्ति की प्रार्थना प्रसन्न-वदन करते। एक मुसलमान कैदी अभियुक्तों से अपने बेटों जैसा स्नेह करते थे, विदा लेते समय वे अपने आंसू न रोक पाये। देश के लिए यह लांछना और कष्ट भोगते देख वे और सबको सम्बोधित कर अफसोस करते, "देखो, ये हैं कुलीन, धनियों की सन्तान, गरीब-दुखियों की रक्षा करने जाने पर इनकी यह दुर्दशा।" जो पाश्चात्य सभ्यता के पिट्ठू हैं उनसे पूछता हूं, इंग्लैण्ड की जेल में निम्नश्रेणी के कैदियों, चोरों, डाकुओं और खूनियों में मिलेगा ऐसा आत्मसंयम, दया-दाक्षिण्य, कृतज्ञता और परार्थ भगवद्भक्ति? असल में तो यूरोप है भोक्तृभूमि और भारत है दातृभूमि। गीता में दो श्रेणी के लोग वर्णित हैं—देव और असुर। भारतवासी हैं स्वभावतः देवप्रकृति और पाश्चात्यगण स्वभावतः असुर-प्रकृति। किन्तु इस घोर कलियुग में, तमोगुण के प्राधान्यवश आर्य-शिक्षा के लोप से, देश की अवनति से हम निकृष्ट आसुरिक वृत्ति सञ्चित कर रहे हैं और दूसरी ओर पाश्चात्य लोग राष्ट्रीय उन्नति और मनुष्यत्व के क्रमविकास के गुण द्वारा देवभाव अर्जित कर रहे हैं। इसके बावजूद उनके देवभाव में कुछ असुरत्व और हमारे आसुरिक भाव में भी देवभाव अस्पष्टतया प्रतीयमान है। उनमें जो श्रेष्ठ हैं वे भी पूरी तरह

असुरत्व-रहित नहीं। निकृष्ट और निकृष्ट की जब हम तुलना करते हैं तो इसकी यथार्थता अति स्पष्ट रूप में समझ में आ जाती है।

इस विषय में बहुत कुछ लिखने को है, प्रबन्ध के बहुत लम्बा हो जाने के भय से नहीं लिखा। तो भी जेल में जिनके आचरण में इस आन्तरिक स्वाधीनता के दर्शन किये हैं, वे हैं इस देवभाव के चरम दृष्टान्त। परवर्ती प्रबन्ध में इस विषय पर लिखने की इच्छा है।

आर्य आदर्श और गुणत्रय

'कारागृह और स्वाधीनता' शीर्षक लेख में कई निरपराध कैदियों के मानसिक भाव का वर्णन कर मैंने यही प्रतिपादित करने की चेष्टा की है कि आर्य-शिक्षा के प्रभाव से जेल में भी भारतवासियों की आन्तरिक स्वाधीनता-रूपी बहुमूल्य पैतृक सम्पत्ति नष्ट नहीं होती—बल्कि घोर अपराधियों में भी हजारों वर्षों से सञ्चित वह आर्य-चरित्रगत देव-भाव भग्नावशिष्ट रूप में वर्तमान रहता है। आर्य-शिक्षा का मूल मन्त्र है सात्त्विक भाव। जो सात्त्विक है वह विशुद्ध है। साधारणतया मनुष्यमात्र ही है अशुद्ध। रजोगुण का प्राबल्य होने से, तमोगुण के घोर अन्धकार के छा जाने से यह अशुद्धि परिपुष्ट और वर्धित होती है। मन का मालिन्य है दो प्रकार का—जड़ता या अप्रवृत्ति-जनित मालिन्य; यह तमोगुण से उत्पन्न होता है। दूसरा, उत्तेजना या कुप्रवृत्तिजनित मालिन्य; यह रजोगुण से उत्पन्न होता है। तमोगुण के लक्षण हैं अज्ञान-मोह, बुद्धि की स्थूलता, चिन्तन की असंलग्नता, आलस्य, अतिनिद्रा, कर्म में आलस्यजनित विरक्ति, निराशा, विषाद, भय, एक शब्द में निश्चेष्टता के पोषक सभी भाव। जड़ता और अप्रवृत्ति अज्ञान के फल हैं, उत्तेजना तथा कुप्रवृत्ति भ्रान्त ज्ञान से उत्पन्न होते हैं। परन्तु तमोमालिन्य को हटाना हो तो वह रजोगुण के उद्रेक द्वारा ही हो सकता है। रजोगुण ही प्रवृत्ति का कारण है और प्रवृत्ति ही है निवृत्ति की पहली सीढ़ी। जो जड़ है वह निवृत्ति नहीं, क्योंकि जड़भाव ज्ञानशून्य है और ज्ञान ही है निवृत्ति का मार्ग। कामनाशून्य होकर जो कर्म में प्रवृत्त होता है वही निवृत्त है—कर्मत्याग का नाम निवृत्ति नहीं है। इसीलिए भारत की घोर तामसिक अवस्था को देख स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, "रजोगुण चाहिये, देश में कर्मवीर चाहिये। प्रवृत्ति का प्रचण्ड स्रोत बह जाने दो। परवाह

नहीं यदि उससे पाप भी आ घुसे, वह तामसिक निश्चेष्टता की अपेक्षा हजारगुना अच्छा होगा।"

वास्तव में हम घोर तम में निमग्न हैं, फिर भी सत्त्वगुण की दुहाई देते हुए महासात्त्विक का स्वांग भर हम अपनी बड़ाई करते फिरते हैं। बहुतों का यह मत है कि सात्त्विक होने के कारण ही हम राजसिक जातियों द्वारा पराजित हुए, सात्त्विक होने के कारण ही हम इस प्रकार अवनत और अधःपतित हैं। ऐसी युक्तियां दे ईसाई धर्म से हिन्दूधर्म की श्रेष्ठता प्रमाणित करने की चेष्टा की जाती है। ईसाई-जाति प्रत्यक्ष फलवादी है, इस जाति के लोग धर्म का ऐहिक फल दिखा धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करने की चेष्टा करते हैं; इनका कहना है कि ईसाई-जाति ही जगत् में प्रबल है, अतएव ईसाई धर्म ही है श्रेष्ठ धर्म। और हममें से कितनों का कहना है कि यह भ्रम है; ऐहिक फल को देखकर धर्म की श्रेष्ठता का निर्णय नहीं किया जा सकता, पारलौकिक फल को देखना चाहिये, हिन्दूजाति अधिक धार्मिक है इसीलिए वह असुरप्रकृति बलवान् पाश्चात्य जाति के अधीन हुई। परन्तु इस युक्ति में आर्यज्ञान-विरोधी घोर भ्रम निहित है। सत्त्वगुण कभी भी अवनति का कारण नहीं हो सकता; यहांतक कि सत्त्वप्रधान जाति दासत्व की शृंखला में बंधकर नहीं रह सकती। ब्रह्मतेज ही है सत्त्वगुण का मुख्य फल, क्षात्रतेज है ब्रह्मतेज की भित्ति। आघात पाने पर शान्त ब्रह्मतेज से क्षात्रतेज का स्फुलिंग निर्गत होता है, चारों दिशाएं धधक उठती हैं। जहां क्षात्रतेज नहीं वहां ब्रह्मतेज टिक नहीं सकता। देश में यदि एक भी सच्चा ब्राह्मण हो तो वह सौ क्षत्रियों की सृष्टि कर सकता है। देश की अवनति का कारण सत्त्वगुण का आतिशय्य नहीं, बल्कि रजोगुण का अभाव है, तमोगुण का प्राधान्य है। रजोगुण के अभाव से हमारा अन्तर्निहित सत्य म्लान हो, तम में विलीन हो गया। आलस्य, मोह, अज्ञान, अप्रवृत्ति, निराशा, विषाद, निश्चेष्टता के साथ-साथ देश की

दुर्दशा और अवनति भी बढ़ने लगी। यह मेघ पहले हल्का और विरल था, फिर कालक्रम में वह इतना अधिक घना हो उठा, अज्ञान और अन्धकार में डूब हम इतने निश्चेष्ट और महत्त्वाकांक्षा-रहित हो गये कि भगवत्प्रेरित महापुरुषों के उदय होने पर भी वह अन्धकार पूर्णतः तिरोहित नहीं हुआ। तब सूर्य भगवान् ने रजोगुणजनित प्रवृत्ति द्वारा देश की रक्षा करने का संकल्प किया।

जाग्रत् रजःशक्ति के प्रचण्ड रूप से कार्यशील होने पर तम पलायनोद्यत हो जाता है परन्तु दूसरी ओर से स्वेच्छाचार, कुप्रवृत्ति और उद्दाम उच्छृंखलता प्रभृति आसुरी भावों के घुस आने की आशंका बनी रहती है। रजःशक्ति यदि अपनी-अपनी प्रेरणा से उन्मत्तता की विशाल प्रवृत्ति के उदर-पूरण को ही लक्ष्य बना कार्य करे तो इस आशंका के लिए यथेष्ट कारण है। उच्छृंखल भाव से स्वपथगामी होने पर रजोगुण अधिक काल तक नहीं टिक सकता, उसमें क्लान्ति आ जाती है, तमस् आ जाता है, प्रचण्ड तूफान के बाद आकाश निर्मल और परिष्कृत न होकर मेघाच्छन्न और वायुस्पन्दनरहित हो जाता है। राष्ट्रविप्लव के बाद फ्रांस की यही दशा हुई। उस राष्ट्र-विप्लव में रजोगुण का प्रचण्ड प्रादुर्भाव हुआ था, विप्लव के अन्त में तामसिकता का अल्पाधिक पुनरुत्थान, पुनः राष्ट्रविप्लव, पुनः क्लान्ति, शक्तिहीनता, नैतिक अवनति—यही है गत सौ वर्षों के फ्रांस का इतिहास। जितनी बार साम्य-मैत्री-स्वाधीनतारूपी आदर्शजनित सात्त्विक प्रेरणा फ्रांस के प्राणों में जगी, उतनी ही बार क्रमशः रजोगुण प्रबल हो, सत्त्वसेवा-विमुख आसुरी भाव में परिणत हो स्वप्रवृत्ति की पूर्ति के लिए सचेष्ट हुआ। फलतः तमोगुण के पुनः आविर्भाव से फ्रांस अपनी पूर्वसञ्चित महाशक्ति को खो म्रियमाण विषम अवस्था में, हरिश्चन्द्र की न्याईं न स्वर्ग में न मर्त्य में, स्थित है। ऐसे परिणाम से बचने का एकमात्र उपाय है प्रबल रजःशक्ति को सत्त्व की सेवा में नियुक्त करना। यदि

सात्त्विक भाव जाग्रत् होकर रजःशक्ति का परिचालन करे तो तमोगुण के पुनः प्रादुर्भाव होने का भय नहीं रह जाता और उद्दाम शक्ति भी शृंखलित और नियन्त्रित हो उच्च आदर्श के वश हो देश और जगत् का हितसाधन करती है। सत्त्व की वृद्धि का साधन है धर्मभाव—स्वार्थ को डुबा परार्थ समस्त शक्ति अर्पण कर देना—भगवान् को आत्म-समर्पण कर समस्त जीवन को एक महान् और पवित्र यज्ञ में परिणत कर देना। गीता में कहा है कि सत्त्व और रजः दोनों मिलकर ही तम का नाश करते हैं, अकेला सत्त्व कभी तम को पराजित नहीं कर सकता। इसीलिए भगवान् ने सम्प्रति धर्म का पुनरुत्थान कर, तथा हमारे अन्तर्निहित सत्त्व को जगा, रजःशक्ति को सारे देश में फैला दिया है। राममोहन राय प्रभृति धर्मोपदेशक महात्माओं ने सत्त्व को पुनरुद्दीपित कर नवयुग प्रवर्तित किया। उन्नीसवीं शताब्दी में धर्मजगत् में जितनी जागृति हुई है उतनी राजनीति और समाज में नहीं हुई। क्योंकि क्षेत्र प्रस्तुत नहीं था, अतएव प्रचुर परिमाण में बीज बोने पर भी अंकुर दिखाई नहीं दिया। इसमें भी भारतवर्ष पर भगवान् की दया और प्रसन्नता ही दिखायी देती है। क्योंकि राजसिक भाव से उत्पन्न जो जागरण होता है वह कभी स्थायी या पूर्ण कल्याणप्रद नहीं हो सकता। इससे पहले जाति के अन्तर में थोड़ा-बहुत ब्रह्मतेज का उद्दीपन होना आवश्यक है। इसीलिए इतने दिनों तक रजःशक्ति की धारा रुकी रही। १९०५ ई. में रजःशक्ति का जो विकास हुआ वह है सात्त्विक भाव से पूर्ण। अतः इसमें जो उद्दाम भाव दिखाई पड़ा है उससे भी आशंका का कोई विशेष कारण नहीं, क्योंकि यह रजःसत्त्व का खेल है; इस खेल में जो कुछ उद्दाम या उच्छृंखल भाव है, वह शीघ्र ही नियमित और शृंखलित हो जायेगा। किसी बाह्य शक्ति द्वारा नहीं, बल्कि भीतर जो ब्रह्मतेज, जो सात्त्विक भाव जागरित हुआ है उसी से यह वशीभूत और नियमित होगा। धर्मभाव के प्रचार से हम उस

ब्रह्मतेज और सात्त्विक भाव का पोषण-भर कर सकते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि परार्थ में समस्त शक्ति लगा देना सत्त्वोद्रेक का एक उपाय है। हमारे राजनीतिक जागरण में इस भाव का यथेष्ट प्रमाण पाया जाता है। परन्तु इस भाव की रक्षा करना कठिन है। यह व्यक्ति के लिए जितना कठिन है, राष्ट्र के लिए उससे भी अधिक कठिन है। परार्थ में स्वार्थ अलक्षित रूप से घुस आता है, और यदि हमारी बुद्धि शुद्ध न हो तो हम ऐसे भ्रम में पड़ सकते हैं कि परार्थ की दुहाई दे और स्वार्थ को आश्रय बना, हम परहित, देशहित और मनुष्यजाति के हित को डुबा दें और फिर भी अपने भ्रम को समझ न सकें। भगवत्सेवा सत्त्वोद्रेक का दूसरा उपाय है। परन्तु इस मार्ग में भी परिणाम विपरीत हो सकता है। भगवत्सान्निध्य-रूपी आनन्द मिलने पर हममें सात्त्विक निश्चेष्टता जनम सकती है, उस आनन्द का स्वाद लेते-लेते हम दुःख-कातर देश के प्रति तथा मानवजाति की सेवा के प्रति उदासीन हो सकते हैं। यही है सात्त्विक भाव का बन्धन। जिस प्रकार राजसिक अहंकार होता है उसी प्रकार सात्त्विक अहंकार भी। जैसे पाप मनुष्य को बन्धन में डालता है वैसे ही पुण्य भी। सभी वासनाओं से शून्य हो, अहंकार का त्याग कर, भगवान् को आत्म-समर्पण किये बिना पूर्ण स्वाधीनता नहीं मिलती। इन दोनों अनिष्टों को त्यागने के लिए सबसे पहले आवश्यकता है विशुद्ध बुद्धि की। देहात्मक बुद्धि का वर्जन कर मानसिक स्वाधीनता का अर्जन करना ही है बुद्धि-शोधन की पूर्ववर्ती अवस्था। मन के स्वाधीन होने पर वह जीव के अधीन हो जाता है और फिर मन को जीत कर और बुद्धि के आश्रय में जा मनुष्य स्वार्थ के पंजे से बहुत-कुछ छुटकारा पा जाता है। इसपर भी स्वार्थ हमें सम्पूर्णतः नहीं छोड़ता। अन्तिम स्वार्थ है मुमुक्षुत्व, परदुःख भूल कर अपने ही आनन्द में विभोर रहने की इच्छा। इसे भी त्यागना होगा। समस्त भूतों में

नारायण की उपलब्धि कर उन्हीं सर्वभूतस्थ नारायण की सेवा ही है इसकी दवा। यही है सत्त्वगुण की पराकाष्ठा। इससे भी उच्चतर अवस्था है और वह है सत्त्वगुण का भी अतिक्रमण कर गुणातीत हो पूर्णतः भगवान् का आश्रय ग्रहण करना। गुणातीत अवस्था गीता में ऐसे वर्णित है :

नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते।।
प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति।।
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणाः वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते।।
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्ठाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः।।
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते।।
मां च यो व्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

"जब जीव साक्षी हो गुणत्रय को, अर्थात् भगवान् की त्रैगुण्यमयी शक्ति को ही एकमात्र कर्ता के रूप में देखता है तथा इस गुणत्रय के भी परे शक्ति के प्रेरक ईश्वर को जान पाता है तब वह भागवत साधर्म्य लाभ करता है। तब देहस्थ जीव स्थूल और सूक्ष्म दोनों देहों से सम्भूत गुणत्रय का अतिक्रमण कर जन्म-मृत्यु-जरा-दुःख से विमुक्त हो अमरत्व का भोग करता है। सत्त्वजनित ज्ञान, रजोजनित प्रवृत्ति या तमोजनित

निद्रा, निश्चेष्टता और भ्रमरूपी मोह के होने पर वह क्षुब्ध नहीं होता, गुणत्रय के आगमन और निर्गमन में समान भाव रखकर उदासीन की भांति वह स्थिर रहता है, गुणावलि उसे विचलित नहीं कर पाती, इसे गुणों की स्वधर्मजात वृत्ति मान, वह दृढ़ रहता है। जिसके लिए सुख और दुःख समान हैं, प्रिय और अप्रिय समान हैं, निन्दा और स्तुति समान हैं, सोना और मिट्टी दोनों ही पत्थर के समान हैं, जो धीर-स्थिर, अपने ही अन्दर अटल है, जिसके लिए मान और अपमान दोनों एक ही बात हैं, जिसे मित्रपक्ष और शत्रुपक्ष दोनों ही समान भाव से प्रिय हैं, जो स्वयं प्रेरित हो किसी कार्य का आरम्भ नहीं करता, सारे कर्म भगवान् को अर्पण कर उन्हीं की प्रेरणा से करता है, उसे ही कहते हैं गुणातीत। जो निर्दोष भक्तियोग द्वारा मेरी सेवा करता है वही इन तीनों गुणों का अतिक्रमण कर ब्रह्म-प्राप्ति के उपयुक्त होता है।"

यह गुणातीत अवस्था सबके लिए साध्य न होने पर भी इसकी पूर्ववर्ती अवस्था सत्त्वगुणप्रधान पुरुष के लिए असम्भव नहीं। सात्त्विक अहंकार का त्याग कर जगत् के सभी कार्यों में भगवान् की त्रैगुण्यमयी शक्ति की लीला को देखना है इसका सबसे पहला उपक्रम। यह बात समझ सात्त्विक कर्ता कर्तृत्वाभिमान त्याग, भगवान् को सम्पूर्ण आत्मसमर्पित हो कर्म करता है।

गुणत्रय और गुणातीत्य के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा, वह है गीता की मूल बात। परन्तु यह शिक्षा साधारणतया अंगीकृत नहीं हुई, अभीतक जिसे हम आर्य-शिक्षा के नाम से सम्बोधित करते आये हैं, वह प्रायः सात्त्विक गुण का अनुशीलन है। रजोगुण का आदर तो इस देश में क्षत्रियजाति के लोप होने के साथ-ही-साथ लुप्त हो गया। यद्यपि राष्ट्रीय जीवन में रजःशक्ति का भी अत्यन्त प्रयोजन है। इसीलिए आजकल गीता की ओर लोगों का मन आकृष्ट हो रहा है। गीता की शिक्षा ने पुरातन आर्यशिक्षा को आधार बनाकर भी उसका अतिक्रमण

किया। गीतोक्त धर्म रजोगुण से भय नहीं खाता, उसमें रजःशक्ति को सत्त्व की सेवा में नियुक्त करने का पथ निर्देशित है, प्रवृत्तिमार्ग में मुक्ति का उपाय प्रदर्शित है। इस धर्म का अनुशीलन करने के लिए राष्ट्र का मन किस प्रकार तैयार हो रहा है इस बात को पहले-पहल मैंने जेल में ही हृदयंगम किया। अभीतक स्रोत निर्मल नहीं हुआ है, अभी भी वह कलुषित और पंकिल है, किन्तु इस स्रोत का अतिरिक्त वेग जब कुछ प्रशमित होगा तब उसके अन्दर छिपी विशुद्ध शक्ति का निर्दोष कार्य होगा।

जो मेरे साथ बन्दी थे और एक ही अभियोग में अभियुक्त थे, उनमें से बहुत-से निर्दोष समझ कर छोड़ दिये गये हैं, बाकी लोगों को यह कहकर सजा दी गयी है कि वे षड्यन्त्र में लिप्त थे। मानव समाज में हत्या से बढ़कर और कोई अपराध नहीं हो सकता। राष्ट्रीय स्वार्थ से प्रेरित हो जो हत्या करता है, उसका व्यक्तिगत चरित्र चाहे कलुषित न भी हो, किन्तु सामाजिक हिसाब से, अपराध का गुरुत्व कम नहीं हो जाता। यह भी स्वीकार करना होगा कि अन्तरात्मा पर हत्या की छाया पड़ने से मन पर मानों रक्त का दाग बैठ जाता है, उसमें क्रूरता का सञ्चार होता है। क्रूरता बर्बरोचित गुण है; मनुष्य उन्नति के क्रमविकास में जिन गुणों से धीरे-धीरे दूर हो रहा है, उनमें क्रूरता प्रधान है। इसका यदि पूर्ण रूप से त्याग कर दिया जाये तो मानवजाति की उन्नति के मार्ग में से एक विघ्नकारी कंटक समूल नष्ट हो जायेगा। अभियुक्तों का दोष मान लेने पर यही समझना होगा कि यह रजःशक्ति की क्षणिक उद्दाम उच्छृंखलता-भर है। उनमें एक ऐसी सात्त्विक शक्ति निहित है कि इस क्षणिक उच्छृंखलता द्वारा देश का स्थायी अमंगल होने की कोई भी आशंका नहीं।

अन्तर की जिस स्वाधीनता की बात मैं ऊपर कह आया हूं वह स्वाधीनता मेरे साथियों का स्वभावसिद्ध गुण है। जिन दिनों हम सब

एक संग एक बड़े-से दालान में रखे गये थे, उन दिनों मैंने उनके आचरण और मनोभाव को विशेष मनोयोगपूर्वक लक्ष्य किया। केवल दो व्यक्तियों को छोड़ अन्य किसी के भी मुंह या जबान पर भय की छाया तक देखने को नहीं मिली। प्रायः सभी तरुण और वयस्क थे, बहुत-से अल्पवयस्क बालक थे; जिस अपराध में वे पकड़े गये थे वह प्रमाणित होने पर उसका दण्ड इतना भीषण है कि कल्पना मात्र से दृढ़मति पुरुष भी विचलित हो जाये। इसके अतिरिक्त, इस मुकद्दमे में रिहाई पाने की आशा भी ये नहीं रखते थे। विशेषतः, मजिस्ट्रेट की अदालत में गवाहों और लिखित गवाहियों का जैसा विस्तृत आयोजन होने लगा उसे देखकर कानून से अनभिज्ञ व्यक्ति के मन में भी सहज ही यह धारणा उपजने लगी कि निर्दोष के लिए भी इस फंदे से निकलने का उपाय नहीं। फिर भी उनके चेहरे पर भय या विषाद के बदले थी केवल प्रफुल्लता, सरल हास्य, अपनी विपत्ति को भूल मुंह में थी धर्म और देश की ही बात। हमारे वार्ड में, प्रत्येक बन्दी के पास दो-चार किताबें होने के कारण एक छोटी-सी लाइब्रेरी बन गयी थी। इस लाइब्रेरी की अधिकांश किताबें थीं धर्मसम्बन्धी—गीता, उपनिषद्, विवेकानन्द-पुस्तकावली, रामकृष्ण-कथामृत और जीवनचरित्र, पुराण, स्तोत्रमाला, ब्रह्म-संगीत इत्यादि। अन्य पुस्तकों में थीं बंकिम-ग्रन्थावली, स्वदेशी गानसम्बन्धी बहुत-सी छोटी-छोटी पुस्तिकाएं, यूरोपीय दर्शन, इतिहास और साहित्य की थोड़ी-बहुत पुस्तकें। प्रातःकाल कोई साधना करने बैठता, कोई पुस्तकें पढ़ता तो कोई धीरे-धीरे बातें करता। प्रातःकाल की इस शान्तिमयी नीरवता में कभी-कभी हंसी की लहरें भी उठतीं। जब कभी कचहरी का दिन नहीं होता तब कुछ लोग सोते, कुछ खेलते—जब जो खेल सामने आ जाये, किसी खास खेल के लिए किसी में कोई आग्रह नहीं। किसी दिन एक वृत्त में बैठ कोई शान्त खेल होता तो किसी दिन दौड़-धूप या कूद-फांद; कुछ दिन फुटबॉल

ही चला, यह फुटबॉल निःसन्देह किसी अपूर्व उपकरण का बना होता था। कुछ दिन आंखमिचौनी चली। कभी-कभी अलग-अलग दल बनाकर एक ओर जुजुत्सु की शिक्षा होती तो दूसरी ओर ऊंची कूद और लम्बी कूद तथा एक ओर ड्राफ्ट या चौपड़। दो-चार गम्भीर प्रौढ़ व्यक्तियों को छोड़ प्रायः सभी बालकों के अनुरोध पर इन खेलों में शरीक होते। मैंने देखा कि इनमें जो बड़े-बूढ़े थे, उनका स्वभाव भी बालकों जैसा ही था। शाम को गाने की मजलिस जुटती। गानविद्या में निपुण उल्लास, शचीन्द्र और हेमदास के चारों ओर बैठ हम सभी गाना सुनते। स्वदेशी या धर्म के गानों के अतिरिक्त और किसी भी तरह का गाना नहीं होता था। किसी-किसी दिन केवल आमोद करने की इच्छा से उल्लासकर के हंसी के गाने, अभिनय, दूरागत-शब्दानुकरण (Ventriloquism), नकल उतारने या गंजेड़ियों की गप द्वारा शाम का समय बिताता। ... मुकद्दमे में कोई भी जी नहीं लगाता था, सभी धर्म या आनन्द में दिन बिताते। यह निश्चिन्त भाव कठिन कुक्रियाभ्यस्त हृदय के लिए असम्भव है; इनके अन्दर काठिन्य, क्रूरता, कुक्रियाशक्ति, कुटिलता लेशमात्र भी नहीं थी। क्या हंसी, क्या बातचीत, क्या खेल-कूद इनका सब कुछ था आनन्दमय, पापहीन और प्रेममय।

इस मानसिक स्वाधीनता का फल शीघ्र ही विकसित होने लगा। इस प्रकार के क्षेत्र में ही धर्म-बीज बोने से सर्वांगसुन्दर फल सम्भव है। ईसामसीह ने कुछ बालकों को दिखाते हुए अपने शिष्यों से कहा था, "जो इन बालकों की तरह हैं वे ही ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।" ज्ञान और आनन्द हैं सत्वगुण के लक्षण। जो दुःख को दुःख नहीं समझते, जो सभी अवस्थाओं में आनन्दित और प्रफुल्लित रहते हैं, वे ही हैं योग के अधिकारी। जेल में राजसिक भाव को प्रश्रय नहीं मिलता, निर्जन कारागार में प्रवृत्ति का परिपोषक कुछ भी नहीं होता। ऐसी अवस्था में असुर-मन चिर-अभ्यस्त रजःशक्ति की ख़ुराक के

अभाव में आहत व्याघ्र की न्याईं स्वयं अपना ही नाश करने लगता है। पाश्चात्य कविगण जिसे eating one's own heart (तीव्र सन्ताप से जी को जलाना) कहते हैं, ठीक वही अवस्था होती है। भारतवासी का मन इस प्रकार की निर्जनता में, इस बाह्य कष्ट की अवस्था में भी चिरन्तन आकर्षण से आकृष्ट हो भगवान् की ओर दौड़ पड़ता है। हमारी भी यही अवस्था हुई। न मालूम कहां से एक स्रोत आ सभी को बहा ले गया। जिसने कभी भगवान् का नाम नहीं लिया था वह भी साधना करना सीख गया। उस परम दयालु की दया का अनुभव कर आनन्दमग्न हो उठा। अनेक दिनों के अभ्यास से योगियों की जो अवस्था होती है, वह इन बालकों की दो-चार महीने की साधना से ही हो गयी। रामकृष्ण परमहंस ने एक बार कहा था, "अभी तुम लोग क्या देखते हो—यह तो कुछ भी नहीं, देश में एक ऐसा स्रोत आ रहा है जिसके प्रभाव से अल्पवयस्क बालक भी तीन दिन साधना करके सिद्धि पायेंगे।" इन बालकों को देखकर उनकी भविष्यवाणी की सफलता में जरा भी सन्देह नहीं रह जाता। ये मानों उसी प्रत्याशित धर्म-प्रवाह के मूर्तिमान पूर्व-परिचय हों। इस सात्त्विक-भाव की तरंग कठघरे तक पहुंच, चार-पांच को छोड़ बाकी सबके हृदय को महानन्द से परिप्लावित कर देती थी। जिसने एक बार भी इसका आस्वादन किया है वह इसे कभी भूल नहीं सकता न कभी किसी दूसरे आनन्द को इस आनन्द के समान ही स्वीकार कर सकता है। यही सात्त्विक भाव है देश की उन्नति की आशा। भ्रातृभाव, आत्मज्ञान और भगवत्प्रेम जिस तरह सहज ही भारतवासी के मन पर अधिकार कर कार्य में प्रकट होते हैं उसी सहज भाव से और किसी भी राष्ट्र में उनका प्रकट होना सम्भव नहीं। इसके लिए चाहिये तमोवर्जन, रजोदमन, सत्त्वप्रकाश। भगवान् की गूढ़ अभिसन्धि से इसी की तैयारी हो रही है भारतवर्ष में।

नवजन्म

गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा—"जो योगमार्ग में प्रवेश कर अन्त तक पहुंचते-न-पहुंचते पतित और योगभ्रष्ट हो जाते हैं, उनकी क्या गति होती है? वे क्या इहलौकिक और पारलौकिक दोनों फलों से वञ्चित हो वायुखण्डित मेघ की तरह विनष्ट हो जाते हैं?" उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा—"इहलोक या परलोक में ऐसे व्यक्तियों का विनाश असम्भव है। कल्याणकृत व्यक्तियों की कभी दुर्गति नहीं होती। पुण्यलोकों में उनकी गति होती है, वहां बहुत दिनों तक निवास कर शुद्ध श्रीमान् पुरुषों के घर में या योगयुक्त महापुरुषों के कुल में दुर्लभ जन्म पाते हैं, उस जन्म में पूर्वजन्मप्राप्त योगलिप्सा से चालित हो सिद्धि के लिए और अधिक प्रयास करते हैं, और अन्त में अनेक जन्मों के अभ्यास से पापमुक्त हो परम गति प्राप्त करते हैं।" जो पूर्वजन्मवाद चिरकाल आर्य-धर्म के योगलब्ध ज्ञान का एक अंगविशेष रहा है उसकी प्रतिष्ठा पाश्चात्य विद्या के प्रभाव से शिक्षित सम्प्रदाय में नष्टप्राय हो गयी थी, श्रीरामकृष्ण-लीला के बाद से, वेदान्त शिक्षा के प्रचार और गीता के अध्ययन से वही सत्य पुनः प्रतिष्ठित हो रहा है। जैसे स्थूल जगत् में heredity (वंशानुक्रम) प्रधान सत्य है, वैसे ही सूक्ष्म जगत् में पूर्वजन्मवाद प्रधान सत्य है। श्रीकृष्ण की उक्ति में ये दोनों ही सत्य निहित हैं। योगभ्रष्ट पुरुष अपने पूर्वजन्मार्जित ज्ञान के संस्कार के साथ जन्म लेते हैं, उसी संस्कार द्वारा, वायुचालित तरणी की तरह, योग-पथ पर चालित होते हैं। परन्तु कर्मफल की प्राप्ति के योग्य शरीर उत्पन्न करने के लिए उपयुक्त कुल में जन्म लेना आवश्यक है। उत्कृष्ट heredity (वंशानुक्रम) सुयोग्य शरीर उत्पन्न करता है। शुद्ध श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म होने से शुद्ध सबल शरीर उत्पन्न करना सम्भव होता है, योगीकुल में जन्म लेने से

उत्कृष्ट मन और प्राण गठित होते हैं तथा वैसी ही शिक्षा और मानसिक गति प्राप्त होती है।

कुछ वर्षों से भारतवर्ष में यह दिखायी दे रहा है मानों पुरानी तमोभिभूत जाति के अन्दर एक नयी जाति सृष्ट हो रही है। भारत माता की पुरातन सन्तति धर्मग्लानि और अधर्म के अन्दर जन्म ले और तदनुसार शिक्षा प्राप्त कर अल्पायु, क्षुद्राशय, स्वार्थपरायण और संकीर्ण-हृदय हो गयी थी। उनमें से बहुत-से तेजस्वी महात्माओं ने शरीर-धारण कर इस विषम विपत्तिकाल में जाति की रक्षा की थी। किन्तु अपनी शक्ति और प्रतिभा के उपयुक्त कर्म न कर वे केवल राष्ट्र के भावी माहात्म्य और विशाल कर्म का क्षेत्र निर्माण कर गये हैं। उन्हींके पुण्यबल से नव उषा की किरणमाला चारों ओर उद्भासित हो रही है। भारत-जननी की नूतन सन्तति माता-पिता के गुण प्राप्त न कर, साहसी, तेजस्वी, उच्चाशय, उदार, स्वार्थत्यागी, परार्थ और देशहितसाधन में उत्साही और उच्चाकांक्षी हो रही है। इसीलिए आजकल युवकगण माता-पिता के वश में न हो अपने स्वतन्त्र पथ के पथिक बन रहे हैं, वृद्ध और तरुण में मतभेद और कार्य में विरोध हो रहा है। वृद्ध लोग इन देवांशसम्भूत तरुण सत्ययुग-प्रवर्तकों को स्वार्थ और संकीर्णता की सीमा में आबद्ध रखना चाहते हैं, अनजान में कलि की सहायता कर रहे हैं। युवकगण हैं महाशक्तिसृष्ट अग्निस्फुलिंग, पुरातन को तोड़फोड़ नवीन को गढ़ने में उद्यत, पितृभक्ति और आज्ञाकारिता की रक्षा करने में अक्षम। भगवान् ही कर सकते हैं इस अनर्थ का उपशमन। किन्तु महाशक्ति की इच्छा विफल नहीं हो सकती, यह नवीन सन्तति जो कुछ करने के लिए आयी है, उसे पूरा किये बिना नहीं जायेगी। इस नवीन में भी पुरातन का प्रभाव है। अपकृष्ट heredity (वंशानुक्रम) के दोष से, आसुरिक शिक्षा के दोष से बहुतेरे कुलांगारों ने भी जन्म लिया है; जिन्हें नवयुग का प्रवर्तन करने का

आदेश मिला है वे भी अन्तर्निहित तेज और शक्ति विकसित नहीं कर पा रहे हैं। नवीन लोगों में सत्ययुग के प्राकट्य का एक अपूर्व लक्षण दिखायी दे रहा है, उनकी धर्म में गति है और बहुतों के हृदय में है योगलिप्सा और अर्ध-विकसित योगशक्ति।

अलीपुर बमकेस के अभियुक्त अशोक नन्दी पीछे बतलायी गयी श्रेणी के थे। जो उन्हें जानते थे उनमें से कोई भी यह विश्वास नहीं कर सकता था कि वे किसी भी षड्यन्त्र में लिप्त थे। उन्हें छोटे-से अविश्वसनीय प्रमाण पर ही दण्ड दिया गया था। वे अन्य युवकों की तरह देशसेवा की प्रबल आकांक्षा से अभिभूत नहीं थे। बुद्धि में, चरित्र में, प्राण में वे पूर्णरूपेण योगी और भक्त थे, संसारी के गुण उनमें नहीं थे। उनके पितामह एक सिद्ध तान्त्रिक योगी थे, उनके पिता भी थे योगप्राप्त शक्तिसम्पन्न विशिष्ट पुरुष। गीता में जो योगीकुल में जन्म लेना मनुष्य के लिए अति दुर्लभ कहा गया है उसी का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ था। छोटी उम्र में उनकी अन्तर्निहित योगशक्ति के लक्षण कभी-कभी प्रकट होते थे। पकड़े जाने से बहुत पहले वे जान गये थे कि यौवन-काल में उनकी मृत्यु निर्दिष्ट है, अतएव विद्योपार्जन और सांसारिक जीवन की आरम्भिक तैयारियों में उनका मन नहीं लगा, फिर भी पिता के परामर्श से, असफलता के पूर्व ज्ञान की उपेक्षा कर, कर्तव्य-कर्म का पालन करते थे और योगमार्ग का भी अनुसरण करते थें। ऐसे समय वे अकस्मात् पकड़ लिये गये। उस कर्मफलप्राप्त विपत्ति से विचलित न हो अशोक जेल में अपनी सारी शक्ति योगाभ्यास में प्रयुक्त करने लगे। इस मुकद्दमे के आसामियों में से बहुतों ने इस पथ का अवलम्बन किया था, उनमें वे अग्रगण्य न होने पर भी अन्यतम थे। वे भक्ति और प्रेम में किसी से भी कम नहीं थे, उनका उदार चरित्र, गम्भीर भक्ति और प्रेमपूर्ण हृदय सबको मोह लेता था। गोसाईं की हत्या के समय वे अस्पताल में रुग्णावस्था

में पड़े थे। पूर्ण स्वस्थ होने से पहले ही निर्जन कारावास में रखे जाने के कारण वे बार-बार ज्वर से पीड़ित होने लगे। उसी ज्वर की अवस्था में उन्हें खुले कमरे में शीत काल की रातें बितानी पड़तीं। इस तरह उन्हें क्षय-रोग हो गया और उसी अवस्था में, जिस समय प्राण-रक्षा की कोई आशा नहीं थी, उन्हें विषम दण्ड देकर फिर से उसी मृत्यु-गृह में बन्द कर दिया गया। बैरिस्टर चित्तरंजन दास की प्रार्थना पर उन्हें अस्पताल ले जाने की व्यवस्था की गयी, किन्तु ज़मानत पर नहीं छोड़ा गया। अन्त में छोटे लाट की सहृदयता के कारण उन्हें अपने घर में, अपने आत्मीय-स्वजनों की सेवा प्राप्त कर मरने की अनुमति प्राप्त हुई। अपील के द्वारा मुक्त होने से पहले ही भगवान् ने उन्हें इस देह-कारागार से मुक्त कर दिया। अन्तिम समय में अशोक की योग-शक्ति में विलक्षण वृद्धि हो गयी थी, मृत्यु के दिन विष्णु-शक्ति से अभिभूत हो सबको भगवान् का मुक्तिदायक नाम और उपदेश वितरण कर, नामोच्चारण करते-करते उन्होंने देह-त्याग किया। पूर्वजन्मार्जित दुःखफल का क्षय करने के लिए अशोक नन्दी का जन्म हुआ था, इसीलिए यह अनर्थक कष्ट और अकाल मृत्यु घटी। सत्ययुग का प्रवर्तन करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है वह शक्ति उनके शरीर में अवतीर्ण नहीं हुई थी परन्तु वे स्वाभाविक योगशक्ति के प्राकट्य का उज्ज्वल दृष्टान्त दिखा गये हैं। कर्म की गति ऐसी ही होती है। पुण्यवान् लोग पापफल का क्षय करने के लिए थोड़े समय तक पृथ्वी पर विचरण करते हैं, फिर पापमुक्त होकर, दूषित देह का त्याग कर और दूसरा शरीर धारण कर अन्तर्निहित शक्ति को प्रकट करने व जीवों का हितसाधन करने के लिए आते हैं।

अन्तिम वक्तव्य

'कारा-काहिनी' (कारावास की कहानी) का अन्तिम हिस्सा मार्च १९१० में 'सुप्रभात' में छपा था, तबतक श्रीअरविन्द ने कलकत्ता छोड़कर चन्दननगर में शरण ले ली थी। ब्रिटिश सरकार के फिर से पीछे पड़ने पर पॉण्डिचेरी आने से पहले वे चालीस दिनों तक गुप्त रूप से रहे, और 'कारा-काहिनी' अधूरी रह गयी। लेकिन नलिनीकान्त गुप्त के लेख,—जो श्रीअरविन्द के साथ-साथ नज़रबन्द रहे—हमें पुलिस तथा अदालत के बीच के सम्बन्ध तथा कैदियों के जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में बतलाते हैं।

श्रीअरविन्द का लेख उस स्थान पर आकर समाप्त हो जाता है जहां अभियुक्तों को एक बड़े हॉल में स्थानान्तरित कर दिया गया था। उन्हें बन्दी बने डेढ़ महीना बीत गया। जून के आखिरी दिन थे। तबतक श्रीअरविन्द तथा हेमचन्द्र दास—जिन्हें विशेष रूप से खतरनाक समझा जाता था—को एकदम से अलग रखा गया था जब कि बाकी कैदियों में से अधिकतर एक-एक कोठरी में तीन-तीन रखे गये थे; यद्यपि उन्हें एकदम से एकान्तवास की कठिन परिस्थितियों से नहीं गुजरना पड़ा फिर भी स्थानाभाव तथा स्वच्छता इत्यादि की कुव्यवस्था उनके लिए दुःख-दर्द तथा अपमान का निरन्तर उत्स थी। अतः इस परिवर्तन को सबने हंसी-खुशी के माहौल के साथ स्वीकारा। केवल श्रीअरविन्द औरों के उत्साह में हिस्सा नहीं लेते थे, उन्होंने निर्जनता को सराहना शुरू कर दिया था और योगाभ्यास के लिए उसे अनिवार्य मानते थे।

यह नया स्थान एक बड़ा कमरा था जो एक बड़े बरामदे में खुलता था और उसके सामने था एक बड़ा मैदान जहां कैदी पानी की कमी के जञ्जाल में फंसे बिना अपने नित्य कर्मों से निवृत्त हो

सकते थे। इससे भी अधिक अच्छा यह हुआ कि सब एक साथ जुट गये और अब वे बेरोक-टोक एक-दूसरे से मिलते, फुर्सत से बातचीत करते या मिलकर काम-काज करते थे। यह बड़ा कमरा आधी ऊंचाई की तीन विभाजक दीवारों से बंटा था और अपने-अपने सादृश्य के अनुसार तीन दल बन गये थे।

नलिनीकान्त गुप्त लिखते हैं, "श्रीअरविन्द इन 'कमरों' में से एक कमरे के एक कोने में ही रहा करते थे। पहली दफ़ा उन्होंने अपने-आपको हमारे बीच पाया और जल्दी ही, उनके भाई बारीन की तरह वे सभी, जिन्होंने आध्यात्मिक जीवन के प्रति आकर्षण का अनुभव किया था, श्रीअरविन्द के चारों ओर आ जुटे। बुद्धिजीवियों ने बीच के कमरे में अपना आसन जमाया जिसकी बागडोर संभाली उपेन्द्र ने, रही बात तीसरे की, तो वहां था नास्तिकों और तर्कबुद्धि-वादियों का राज, हेमचन्द्र दास थे इसके कर्ता-धर्ता।

"... हम मन बहलाने के लिए विभिन्न प्रकार के खेल खेला करते थे : प्रहसन, मूकाभिनय, पाठ, गीत। हमारी खुशी पर कोई पानी नहीं फेर सकता था। इस सबके बीच श्रीअरविन्द अपने कोने में ध्यान और समाधि में निरत रहते लेकिन बीच-बीच में हमारे इन मनबहलाव के खेलों में हिस्सा लेने से भी नहीं हिचकिचाते...।"

जल्दी ही कैदियों को किताबों की स्वीकृति मिल गयी और इस तरह उन्होंने एक छोटा-मोटा पुस्तकालय खड़ा कर लिया जिसमें उपनिषद्, पुराण, भगवद्गीता, रामकृष्ण के वचन तथा विवेकानन्द साहित्य के साथ-साथ बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास, शेक्सपीयर के नाटक, बेकन के लेख इत्यादि भी सम्मिलित थे। और किताबें न मिल पाने के कारण लोग इन्हीं चीजों को पढ़ते और दुबारा-तिबारा पढ़ते। इस बीच उनके अन्दर एक तरह की विह्वलता पनपने लगी थी। क्या होगा? क्या उन्हें अपना सारा जीवन जेल में ही बिताना

होगा? और अगर उनमें से कइयों को फांसी हो गयी तो?

ऐसे समय बारीन ने भागने की बात सोची। अपने कुछ साथियों को साथ ले उसने अपनी योजना बनानी शुरू की, और इसके लिए चन्दननगर के क्रान्तिकारियों के साथ सम्पर्क साधे। विचार यह था कि एक शाम को इसे क्रियान्वित किया जाये जब कुंछ-एक उदासीन-से सिपाहियों की निगरानी में सभी को बाहर खुले मैदान में आने-जाने की छूट मिलती थी। उस समय अपने साथियों द्वारा बाहर से अन्दर फेंकी गयी सीढ़ियों तथा रस्सियों के सहारे चढ़कर हाथ में रिवॉल्वर लिये वे जेल की सरहद को पार करने की योजना बना रहे थे। और बाहर तैयार खड़ी घोड़ागाड़ियां उन्हें तीर की तेजी से गंगा के तट पर पहुंचा देतीं जहां से नाव लेकर वे सब सुन्दर वन की दिशा में चल पड़ते। विचार यह था कि हिंस्र पशुओं से भरे हुए इस वन में पुलिस छान-बीन करने का जोखिम न उठायेगी।

लेकिन सब इस रूमानी योजना से सहमत न थे, श्रीअरविन्द ने तो इस योजना में किसी भी तरह से शरीक होने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा, "रही मेरी बात, मैं तो न्यायालय में उपस्थित होऊंगा।"

दूसरी तरफ, कानाईलाल दत्त और सत्येन बोस से प्रेरित हो, कैदियों का एक और दल एकदम से दूसरी ही तरह की योजना बनाने में जुटा था। वह थी गद्दार नरेन्द्रनाथ गोस्वामी को खतम करने की योजना। शायद नरेन्द्रनाथ यह भांप गया था कि उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा जा रहा है क्योंकि जहां कई एकदम गुप्त रूप से साजिश कर रहे थे वहां दूसरे अपने भावों को छिपा नहीं रहे थे, उन्होंने तो उसे धमकी तक दे दी थी। और फिर पुलिस को गोस्वामी की खास जरूरत थी और वह उसे उन सहकैदियों की दया पर नहीं छोड़ सकती थी जो उसे चुपचाप खत्म कर देने में समर्थ थे। और फिर

सुरक्षा की दृष्टि से नरेन्द्रनाथ को यूरोपियन कैदियों के लिए आरक्षित विभाग में स्थानान्तरित कर दिया गया।

इस बीच, सत्येन बोस को,—जो प्रायः दमे से पीड़ित रहते थे—जेल के अस्पताल में भरती कर दिया गया। उधर कानाईलाल दत्त को अचानक कोई अजीब बीमारी लग गयी और वे भी अस्पताल में आ गये। अब सत्येन ने गोस्वामी के साथ सम्पर्क साधा। अपनी बीमारी के बारे में शिकायत करते हुए उसने गोस्वामी से कहा कि बीमारी के कारण जेल-जीवन उसके लिए असहनीय हो उठा है, अगर गोस्वामी उसे मुक्त करवाने का वचन दे सके तो वह उसे कई गुप्त जानकारियां दे देगा। गोस्वामी को मरीज़ से मिलने-जुलने की स्वीकृति मिल गयी और पहली दो मुलाकातों में ही मरीज़ ने उसे अपने विश्वास में ले लिया और इस तरह गोस्वामी ने कई बहुमूल्य जानकारियां मिलने की आशा से तीसरी बार मिलना स्वीकार कर लिया। इस भांति ३१ अगस्त को वह हमेशा की तरह अपने अंग्रेज अंगरक्षक के साथ अस्पताल में पहुंचा। सत्येन दूसरी मंजिल पर दूसरे मरीज़ों तथा अपने अंगरक्षक को अलग ले गये। कानाईलाल ने भी वहांतक पहुंचने में देर नहीं लगायी। कुछ क्षणों की बातचीत के बाद अचानक दोनों कैदियों ने रिवॉल्वर निकालकर गोस्वामी को मार डालने की चेष्टा की। गोस्वामी तथा उसके अंगरक्षक दोनों ही आहत हुए लेकिन फिर भी दोनों कुछ दूर तक भागने में सफल हुए, इधर सत्येन और कानाईलाल जेल की सीढ़ियों और गैलरियों से गोलियां बरसाते हुए किसी के बीच में पड़ने की कोशिश को विफल करते हुए उनके पीछे-पीछे भागे। अन्त में एक गोली गोस्वामी की रीढ़ की हड्डी में जा लगी। वह नाली में लुढ़क गया, इतने में किसी अंग्रेज कैदी ने आक्रामकों को अपने नियन्त्रण में कर लिया।

नलिनीकान्त गुप्त लिखते हैं, "तब, खतरे की घण्टी भीषण आवाज

में झनझना उठी जिसे विकट संकटकाल में ही बजाया जाता था। उसी समय पागलों की भांति भागता हुआ एक कैदी यह चिल्लाने लगा, "नरेन गोसाईं ठण्डा हो गया..." तुरन्त संगीन लिए पुलिस की एक टुकड़ी तेजी से उस आंगन में आ घुसी जहां हम रोज की अपनी सैर कर रहे थे। पुलिस ने हमें भेड़ के झुण्ड की तरह हमारे आवास में धकेल दिया मानों हम बलि के पशु हों। बिना किसी सद्भाव के हमारी सबकी तलाशी ली गयी, फिर सबको एक पंक्ति में खड़ा करके आदेश दिया गया: "सबको हवालात में बन्द कर दिया जाये!"

"... जेल के अधिकारीगण यह समझ गये थे कि ऊपर से दीखनेवाली मधुरता के नीचे हम सचमुच किस धातु के बने थे। यह हमारे "स्वर्णिम युग" का अन्त था। जिन सुविधाओं तथा लाभों का हम मजा लूटते थे उन सब पर पूर्णविराम लग गया। उसके बाद तो बस कचहरी ही वह एकमात्र स्थान बच रहा जहां हम एक-दूसरे से मिल सकते थे।"

आखिर किस तरह से कैदी इन अस्त्र-शस्त्रों को जुटा पाये? यह बात जेल के अधिकारियों और पुलिस की समझ में न आयी। क्या रिवॉल्वर बिस्कुट के डिब्बों में आये, या फिर बड़े-बड़े कटहलों में जो कई-कई किलो के वजनदार फल होते हैं या फिर बड़ी मछलियों का पेट चीरकर रखे गये थे? क्योंकि, उस समय जब हम सब साथ रहते थे कैदियों को अपना खाना खुद बनाने की और बाहर से राशन मंगवाने की छूट थी। जो पुलिसवाला कानाईलाल से इस विषय में पूछ-ताछ कर रहा था उससे कानाई ने अपने अभ्यासगत विनोद के साथ कहा, "खुदीराम की आत्मा ने मुझे रिवॉल्वर दी।" मुजफ्फरपुर के हत्या-काण्ड के सिलसिले में खुदीराम को हाल में ही फांसी लगी थी।

सचमुच, कैदियों के हाथों में ये हथियार सबसे सरल तरीके से

आये। चूंकि उनके आचरण ने पुलिसवालों पर विश्वास जमा लिया था अतः उन्हें मां-बाप और इष्ट-मित्रों से मिलने की अनुमति मिल गयी थी। बाहर के कमरे में कैदियों और मिलनेवालों के बीच सरियों का एक जंगला भर था जिसमें से आसानी से चीजों का आदान-प्रदान हो सकता था। विदा लेते वक्त दोनों पक्ष के लोग प्रेम के वशीभूत, सरियों के और भी पास आ जाते थे, इस तरह के भावोद्रेक के समय जब दोनों तरफ से हाथ मिलते, शाल की आड़ में या साड़ी के आंचल में छिपाकर रिवॉल्वर एक हाथ से दूसरे में स्थानान्तरित हुए। सन्तरियों की दृष्टि से बचने के लिए बन्दियों ने एक और चाल चली। कैदी जहां सोते थे वहां की जमीन जरा उठी हुई थी, मिट्टी के फर्श पर एक चादर बिछा कर वे सो जाया करते थे, जिनके पास रिवॉल्वर था उन्होंने अपनी इस "शय्या" को खोद कर उसे अन्दर गाड़ दिया था।

कानाईलाल को निस्सन्देह कुछ डर-सा लगा रहता था अतः वह सिर से पैर तक चादर तानकर दिन का अधिकांश समय वहीं लेटे-लेटे ही गुजारता और अगर उत्सुकतावश कोई उससे उसका कारण पूछता तो वह जवाब में कहता, "मैं आन्तरिक जगतों में प्रवेश करने की कोशिश में लगा हूं।" अपने जजों के सामने उसने यह घोषणा की थी कि गोसाईं का काम तमाम उसने इसलिए किया क्योंकि वह देशद्रोही था। सत्येन बोस के साथ जब उसे भी मृत्युदण्ड देने की घोषणा कर दी गयी तो उसने अपील करने से साफ इन्कार कर दिया "शाश्वत आत्मा को कौन मार सकता है?" दोनों ने वही काम किया जो उन्हें करना था, उन्होंने जिरह की तारीख से पहले गोस्वामी को रास्ते से हटा दिया ताकि उसके वे बयान जो कैदियों को बड़े जोखिम में डाल सकते थे, विशेषकर श्रीअरविन्द को, वे सभी रद्द हो गये। क्योंकि मानिकतल्ला बगीचे से कुछ दस्तावेज़ मिले थे जिनमें कुछ में

'बड़ा कर्ता' और कइयों में 'छोटा कर्ता' लिखा था। गोस्वामी ने पुलिस को बताया था कि 'बड़ा कर्ता' से श्रीअरविन्द की ओर संकेत है और 'छोटा कर्ता' से बारीन की ओर।

अभियोग लगानेवालों को अपने मुख्य मुखबिर से हाथ धोना पड़ा, लेकिन फिर भी श्रीअरविन्द के सिर पर कई बड़े-बड़े इल्ज़ाम लगे थे, उनकी बहन सरोजनी ने उनके बचाव के लिए वकील जुटाने के लिए आवश्यक धन-राशि के लिए अपने देशवासियों से अपील की :

"मेरे देशवासी इस बात से अनभिज्ञ नहीं हैं कि मेरे भाई, अरविन्द घोष के विरुद्ध एक गम्भीर इल्ज़ाम लगाया गया है लेकिन मुझे पूरा विश्वास है और मेरे पास यह सोचने के कारण हैं कि मेरे देशवासियों में से अधिकतर का भी यही विश्वास है कि वे पूरी तरह निर्दोष हैं। मेरे ख्याल से अगर कोई योग्य वकील उनके बचाव के लिए आये तो उनके छूटने की पूरी सम्भावना है। लेकिन चूंकि अपने-आपको देशसेवा में उत्सर्ग कर देने के लिए उन्होंने गरीबी का प्रण ले रखा है अतः उनके पास किसी श्रेष्ठ वकील को नियुक्त करने के साधन नहीं हैं। अतः उनकी तरफ से मैं जनता की भावना और अपने देशवासियों की उदारता से अपील करने की कष्टकर अनिवार्यता महसूस कर रही हूं। मैं जानती हूं कि सभी उनके राजनैतिक मतों से सहमत नहीं हैं। लेकिन एक बात मैं भद्रता से कहना चाहूंगी कि बहुत कम भारतीय ऐसे होंगे जो उनकी महान् उपलब्धियों, उनके आत्मोत्सर्ग, देश के लिए उनकी एकनिष्ठ भक्ति और उनके चरित्र की उच्च आध्यात्मिक़ता की सराहना न करते हों, ये बातें मुझे—एक नारी को—इस बात का प्रोत्साहन देती हैं कि मैं भारत के हर पुत्र और पुत्री के सम्मुख खड़ी होकर एक भाई के बचाव के लिए—जो मेरा भाई होने के साथ-साथ उनका भी भाई है, सहायता की मांग करूं।"
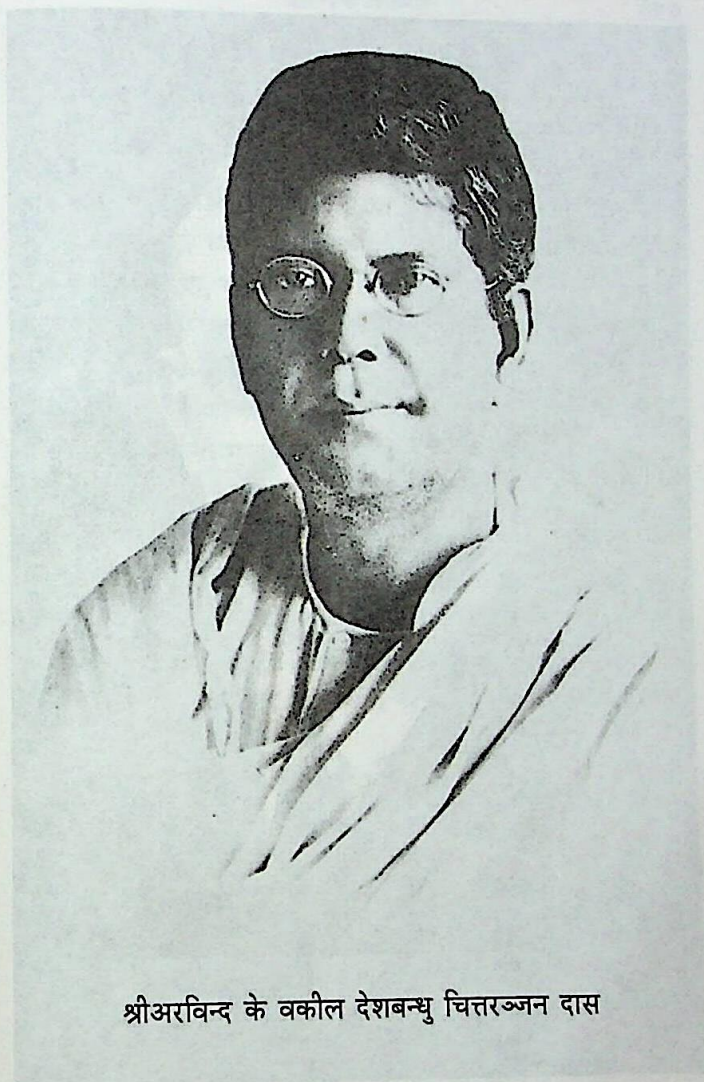
श्रीअरविन्द के वकील देशबन्धु चित्तरञ्जन दास

न्यायाधीश सी. पी. बीचक्राफ्ट

इसके कुछ समय के बाद ही महाशय चित्तरञ्जन दास—जो नामी वकील और उत्साही देशभक्त होने के साथ-साथ श्रीअरविन्द के पुराने मित्र भी थे—उनके बचाव के लिए आ गये। अब तो मुकद्दमे की सारी धारा ही बदल गयी। सरकारी अभियोक्ता द्वारा जुटाये गये सभी प्रमाणों को ब्योरे में देखा गया, दोषारोपण के सभी तर्कों का खण्डन किया गया, नॉर्टन महोदय के सुन्दर ढांचे ढह गये : चित्तरञ्जन दास के तीक्ष्ण संवादों से ब्रिटिश सरकार के अधिवक्ता पर चुप्पी छा गयी। जिस दिन चित्तरञ्जन दास को अपना अन्तिम वक्तव्य सुनाना था उस दिन उनकी प्रेरक वाणी ने समस्त जनसमूह को झकझोर दिया। नलिनीकान्त गुप्त ने अपने संस्मरणों में इस घटना का उल्लेख किया है :

अचानक हॉल में पूरी चुप्पी छा गयी; चित्तरञ्जन दास की आवाज संयत रूप से धीरे-धीरे उठती हुई अधिकाधिक गूंजने लगी। हम सब उठ गये और एक महान् शान्ति में, एकाग्रचित्त, अचञ्चल हम सबने चित्तरञ्जन के शब्द सुने। ऐसा लग रहा था मानों किसी भागवत शक्ति ने उनपर अधिकार कर लिया हो और वही उन शब्दों के पीछे गूंज रही थी :

"इस वाद-विवाद के नीरव हो जाने के बहुत बाद, इस संघर्ष और उथल-पुथल के शान्त हो जाने के बहुत बाद, इनके मर-खप जाने के बहुत बाद भी इन्हें देशभक्ति के कवि, राष्ट्रीयता के मसीहे और मानवता के प्रेमी के रूप में याद किया जायेगा। इनके देहान्त के बहुत बाद इनके शब्द केवल भारत में ही नहीं, बल्कि समुद्र-पार देश-देशान्तरों में भी गुञ्जित और प्रतिगुञ्जित होते रहेंगे... मेरा दावा है कि इस स्थिति का मनुष्य केवल आपकी अदालत के सामने नहीं, विश्व-इतिहास की अदालत के सामने खड़ा है।"

जज चार्ल्स पौर्टन बीचक्राफ्ट भी श्रीअरविन्द को बहुत पहले से

जानते थे। एक ही काल में दोनों ने केम्ब्रिज में अध्ययन किया था तथा इंडियन सिविल सर्विस की परीक्षा में भी दोनों साथ-साथ गये थे। श्रीअरविन्द के भारत आने के तीन महीने पहले नवम्बर १८९२ में बीचक्राफ्ट की बंगाल में नियुक्ति हुई जहां उन्होंने मजिस्ट्रेट की शिक्षा पायी, फिर उन्हें एक इलाके के प्रशासन का कार्य-भार सौंप दिया गया। न्याय की सहज भावना और उनकी निष्पक्षता ने उन्हें भारतीयों के बीच बहुत लोकप्रिय बना दिया था। १९०५ में जब लोग बंगाल-विभाजन के विरोध में भड़क उठे थे तब बीचक्राफ्ट को अलीपुर के इलाके की न्याय-व्यवस्था का कार्यभार सौंपा गया। १९०८ में उन्होंने अदालत के ऐसे बहुचर्चित मुकद्दमे की अध्यक्षता की जैसा कभी कलकत्ते में नहीं हुआ : चालीस व्यक्तियों पर "राजा के विरुद्ध युद्ध करने का" इल्ज़ाम लगाया गया था। श्रीअरविन्द के साथ आखिरी बार मुलाकात हुए बीस बरस बीत गये थे। अब दोनों का आमना-सामना हुआ था। एक अदालत की कुर्सी पर आसीन थे तो दूसरे अभियोगियों की पंक्ति में, कठघरे में बन्दी, जिन पर अभेद्य पहरा बिठाया गया था।

बीचक्राफ्ट को श्रीअरविन्द के क्रान्तिकारी होने का विश्वास ही नहीं हो पा रहा था, और तब तो और भी कम जब एक जज-निर्धारक ने कहा कि यह बात अकल्पनीय है कि इनके जैसे उच्च कुलीन तथा बौद्धिक क्षमतावान् व्यक्ति ने कभी ऐसे बचकाने षड्यन्त्र की सफलता पर विश्वास किया हो या कभी इसमें किसी भी तरह का हिस्सा लिया हो। बीचक्राफ्ट ने श्रीअरविन्द के 'वन्दे मातरम्' के तथा अन्य लेखों, उनके भाषणों, उनके पत्र-व्यवहार इत्यादि को पढ़ा, उनका विश्लेषण किया था। उनके साहित्यिक गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की —लेकिन सबसे अधिक वे उन लेखों में प्रकाशित आदर्श की उच्चता से प्रभावित हुए थे। उनका यह विश्वास हो चला था कि श्रीअरविन्द के वे लेखांश जिनका उपयोग दोष को सिद्ध करने के

लिए किया गया था, वे सचमुच उसी उच्च आदर्श से स्पन्दित थे और उनका उद्देश्य भारत के पुनरुज्जीवन के सिवाय और कुछ न था।

अपने फैसले के मूल पाठ में, जिसमें तीन सौ से कम पृष्ठ नहीं हैं, बीचक्राफ्ट ने श्रीअरविन्द को एक प्रतिभाशाली, "बहुत ही धार्मिक प्रवृत्तिवाले" ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है जिनके लिए भारत की स्वाधीनता का युद्ध प्रमुख रूप से आध्यात्मिक महत्त्व रखता था।

उन्होंने चित्तरञ्जन दास के तर्कों का ही सहारा लिया : श्रीअरविन्द के राजनैतिक विचारों में उनके दार्शनिक विश्वास के संस्कार हैं, वेदान्त जिस आदर्श को व्यक्ति के लिए प्रस्तुत करता है, श्रीअरविन्द उसी को भारतवासियों के सामने रख रहे हैं : "जिस तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तरस्थ दिव्यत्व को पाना है और इस तरह जो कुछ उसके अन्दर उत्तम है उसे चरितार्थ करना है, उसी तरह किसी देश को अपनी आत्मा को खोजना होगा ताकि वह अपने अन्दर की उत्तम वस्तु को अभिव्यक्त कर सके। श्रीअरविन्द कहते हैं कि इस तरह की मुक्ति कोई विदेशी शक्ति क्रियान्वित नहीं कर सकती; इस लक्ष्य को तो अपने मूलभूत स्वदेशी साधनों द्वारा स्वयं राष्ट्र को ही पाना होगा।" इसी कारण वे लोगों से यही कहते रहते हैं कि वे किसी विदेशी सहायता पर निर्भर रहने की अपेक्षा अपनी मुक्ति को स्वयं प्राप्त करें।

इसके बाद बीचक्राफ्ट ने इल्ज़ाम के सभी कागजों का विश्लेषण श्रीअरविन्द की इस विशाल दृष्टि के प्रकाश में किया; वे कहते हैं : अगर हम यह मानकर चलें कि लेखक षड्यन्त्रकारी है तो हमें इससे कई शंकास्पद अनुच्छेद मिल जायेंगे, लेकिन अगर हम किसी पूर्वाग्रही विचार के बिना इसे पढ़ें तो हमें इसमें ऐसा कुछ भी नहीं मिलेगा

जिससे शंका पैदा हो।

सबसे अधिक संकट में डालनेवाली चीज थी प्रसिद्ध "मिष्टान्न पत्र" जिसे बारीन ने श्रीअरविन्द को लिखा था। ऐसा माना गया कि इस पत्र का षड्यन्त्र के साथ गहरा सम्बन्ध है। अभियोगकर्ता को "मिष्टान्न" शब्द में "बम" शब्द की प्रिय ध्वनि सुनायी दे रही थी। बीचक्राफ्ट ने यह प्रमाणित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी कि यह पत्र मिथ्या है और अन्ततः उसे नहीं रखा गया।

नरेन्द्रनाथ गोस्वामी के बयान भी संकटपूर्ण हो सकते थे लेकिन उनका अब कोर्ट में उपयोग नहीं किया जा सकता था। अतः सरकारी वकील को अभियोगी को अपने चंगुल में फंसाने के लिए उन दो तत्त्वों से वञ्चित रहना पड़ा जिनकी सबसे अधिक जांच-पड़ताल होनी थी।

दूसरी तरफ कई ठोस तथ्य श्रीअरविन्द की निर्दोषता जतला रहे थे : यह तथ्य कि मानिकतल्ला के बगीचे में उनका आना-जाना नहीं था, यह तथ्य भी कि 'वन्दे मातरम्' के अपने लेखों में वे हिंसा का अनुमोदन नहीं किया करते थे। ये चीजें और इसके साथ-साथ बचाव द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक तर्क-वितर्कों द्वारा—मुख्य रूप से बीचक्राफ्ट द्वारा—श्रीअरविन्द बरी हो गये। बीचक्राफ्ट ने अपनी रिपोर्ट इन शब्दों में समाप्त की :

"भारत की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किसी व्यक्ति के लिए यह खतरनाक हो सकता है कि वह चीजों की वर्तमान व्यवस्था से असंगत सिद्धान्तों को प्रकाशित करे, कई परिस्थितियों में इसे राजद्रोह के आरोप में उचित ठहराया जा सकता है। इस तरह का आरोप अरविन्द पर लगाया जा सकता है या नहीं इसको जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुद्दा तो यह है कि क्या उनके लेख और भाषण जो स्वयं अपने-आपमें देश के पुनरुज्जीवन के अतिरिक्त और

किसी चीज का समर्थन नहीं करते और इस केस में उनके विरुद्ध उठाये गये तथ्य क्या इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि वे षड्यन्त्र के सदस्य थे? और सभी प्रमाणों को इकट्ठा कर लेने पर मेरा यह मत है कि मेरी तरफ से यह न्यायसंगत न होगा कि इतने बड़े आरोप के लिए उन्हें दोषी सिद्ध कर दूं, क्योंकि प्रमाण अपर्याप्त हैं।"

६ मई १९०९ की सुबह जब फैसला सुनाया जानेवाला था, ५०० सिपाहियों की एक टुकड़ी जेल और अदालत के रास्तों पर कैदियों द्वारा पलायन के सभी प्रयासों को रोकने, प्रदर्शन इत्यादि से बचने और जज को पूरी सुरक्षा प्रदान करने के लिए गश्त लगा रही थी। असाधारण सुरक्षा का इंतजाम किया गया था। जब बीचक्राफ्ट ने सुनवाई-कक्ष में प्रवेश किया, जहां सभी अभियोगी इकट्ठे थे, तो सारे हॉल में एक सन्नाटा-सा छा गया। बिना किसी प्रस्तावना के बीचक्राफ्ट ने अपराधियों की सूची पढ़ दी। एक कैदी ने उस मुहूर्त का वर्णन करते हुए कहा, "क्षण भर के लिए बीचक्राफ्ट उस धीरता से डिग गये जो न्यायाधीश के लिए उचित होती है, और हम लोगों ने लक्ष्य किया कि बारीन्द्र कुमार घोष और उल्लासकर दत्त के लिए मृत्यु-दण्ड की घोषणा करते समय उनके स्वर में हल्का-सा कम्पन आ गया था, इन दोनों को ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने और अस्त्र-शस्त्र जुटाने इत्यादि के अपराध में दोषी करार दिया गया था। अपील के लिए उन्हें आठ दिनों की मोहलत दी गयी। अन्य कैदियों में से छह को कालेपानी की सजा हुई, छह को कुछ वर्षों का निर्वासन मिला। बाकी को, जिनके नाम पढ़कर सुनाये नहीं गये, जिनमें श्रीअरविन्द भी थे, निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया गया। इन लोगों को बन्दी बने हुए एक साल गुज़र गया था।

मुक्त हो जाने के बाद श्रीअरविन्द ने "बंगाली" पत्रिका के प्रकाशक

को यह पत्र भेजा :

"कृपा करके मुझे अपनी पत्रिका के स्तम्भ द्वारा उन सभी लोगों के प्रति कृतज्ञता का गभीर भाव प्रदर्शित करने की अनुमति दीजिये जिन्होंने मुकद्दमे के समय मेरी सहायता की। अपने उन असंख्य परिचित तथा अपरिचित शुभचिन्तकों के नाम भला मैं कैसे जानूंगा जिन्होंने अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार मेरे बचाव के लिए रुपया जुटाने में योगदान दिया। न ही मैं उन सबको व्यक्तिगत रूप से अपना धन्यवाद भेज सकूंगा, मैं उनसे यह विनती करता हूं कि वे सब मेरी कृतज्ञता की इस सार्वजनिक अभिव्यक्ति को स्वीकार करें। मेरे जेल से छूटने के बाद मेरे पास कई तार और चिट्ठियां पहुंचीं लेकिन प्रत्येक को उत्तर दे पाने के लिए वे बहुत ही बड़ी संख्या में हैं। मैं अपने देशवासियों के लिए जो थोड़ा-सा काम कर पाया, उसके बदले में उन्होंने मुझ पर जितना प्रेम उंडेला वह प्रचुर रूप से उस प्रत्यक्ष दुर्भाग्य या मुसीबत की क्षतिपूर्ति है जो मेरी सार्वजनिक गतिविधियों द्वारा मुझ पर आ सकती थी। जेल से अपनी मुक्ति का श्रेय मैं किसी मानव हस्तक्षेप को नहीं देता बल्कि सबसे पहले मैं हम सबकी मां की सुरक्षा के प्रति आभारी हूं, हमारी सबकी मां जिन्होंने मेरा साथ कभी नहीं छोड़ा, बल्कि मुझे हमेशा अपनी बांहों में रखा और दुःख-दर्द और सभी दुर्भाग्यों से मेरी रक्षा की, और फिर मैं आभारी हूं उन हजारों लोगों की प्रार्थनाओं के प्रति जो मेरे बन्दी बनने के साथ-साथ मेरे लिए मां की ओर उठीं। अगर मेरे देशप्रेम ने मुझे खतरे में डाला तो मेरे देशवासियों ने मुझे उस खतरे से सकुशल बाहर निकाला।"

श्रीअरविन्द की जेल से मुक्ति से ब्रिटिश गवर्नमेंट को अपनी हार का-सा अनुभव हुआ। उनके अनुसार बीचक्राफ्ट के फैसले पर कई एक स्थानों पर प्रश्न उठाये जा सकते थे : बीचक्राफ्ट यह ठीक

तरह से नहीं समझ पाये कि "श्रीअरविन्द का धर्म था अंग्रेजों का भारत से निष्कासन", वह चाहे किसी भी उपाय से क्यों न हो, भले आध्यात्मिक शक्ति द्वारा क्यों न हो। न ही उन्होंने श्रीअरविन्द के लेखों और उनके भाषणों को गहराई से परखा, शोले भड़कानेवाले वाक्यों के "निर्दोष अर्थ" लगाये, और यह न देखा कि उनके कुछ अप्रकाशित लेख, जिन्हें बीचक्राफ्ट ने सरल दार्शनिक चिन्तन कह दिया था वे सचमुच "उपयोग करने के लिए प्रस्तुत शस्त्रास्त्र" थे। सबसे अधिक तो उन्होंने ऐसे तथ्यों को अस्वीकार करने की गलती की जो ब्रिटिश सरकार की नजरों में दोषी सिद्ध होने के यथासम्भव प्रमाण थे : "मिष्टान्न पत्र", दोषारोपण का मुख्य विषय जिसे बीचक्राफ्ट ने जाली कहकर परे हटा दिया और कोई महत्त्व न दिया, अपने भाई बारीन के साथ के सम्बन्ध, दल के कई सदस्यों के साथ उनका पत्र-व्यवहार, यह तथ्य कि वे उनके "अध्यक्ष" ही नहीं बल्कि एक तरह से गुरु समझे जाते थे—इन सब गम्भीर धारणाओं को बीचक्राफ्ट ने इस बहाने एक ओर सरका दिया कि अरविन्द कभी मानिकतल्ला के बगीचे में गये ही नहीं। बंगाल सरकार के सेक्रेटरी जनरल लिखते हैं, "अरविन्द न केवल इस षड्यन्त्र में पूरी तरह डूबे हुए थे बल्कि वे इस संस्था के मस्तिष्क थे, वे नैतिक तथा बौद्धिक ऊर्जा के उत्स थे। अगर हम इस बात को स्वीकार कर लें और अगर हमें उन्हें दोषी सिद्ध करने का अवसर प्राप्त हो जाये तो उन्हें दोषमुक्त कर देना राजनैतिक आत्मघात होगा।"

बीचक्राफ्ट के फैसले का विरोध करने का निश्चय करके सरकार ने इस मामले में बम्बई के हाईकोर्ट से राय मांगी। इस मामले के कागज-पत्रों का मुआयना करने के बाद ऐसा लगा कि अगर इस मामले की अपील की गयी तो बहुत सम्भव है कि श्रीअरविन्द को दोषी ठहराकर उनके विरुद्ध कोई फैसला हो जाये। लेकिन कइयों

को इस बात का भय था कि ऐसा कदम उठाने पर सारी जनता में असन्तोष की एक आग भड़क उठेगी, जिस जनता के लिए श्रीअरविन्द एक तरह से "हीरो" थे। छह महीनों तक उन लोगों के बीच विचार-विमर्श तथा इस और उस पक्ष की बातचीत ही चलती रही और उसका परिणाम यह निकला कि फैसला सुनाने के बाद कानूनन छह महीने का विलम्ब हो जाने की वजह से उस मामले की अपील न की जा सकी।

लेकिन फिर भी अंग्रेजों की मंशा अपने "सबसे अधिक भयंकर विरोधी" को मुक्त छोड़ने की कतई न थी। श्रीअरविन्द के क्रिया-कलापों को बन्द करने के अन्य साधन भी थे: उदाहरण के लिए अगर वे उनके लेखों, भाषणों या उनकी गतिविधियों में किसी प्रकार का कोई छिद्र देख लें या छिपा अर्थ ढूंढ़ निकालें तो एक बार फिर से उनके विरुद्ध मुकद्दमा चला सकते थे, लेकिन अपने समस्त प्रयासों के बावजूद पुलिस ऐसे प्रमाणों को नहीं जुटा पायी जो श्रीअरविन्द को दोषी ठहराते। बिना किसी न्याय के व्यक्ति को कहीं दूर जेल भिजवा देना—यह ब्रिटिश शासन-प्रणाली का एक नियम था जिसके अधिकार अंग्रेजों को भारत में प्राप्त थे यानी वर्तमान सरकार के विरुद्ध आचरण करनेवाले या उसकी प्रवृत्ति रखनेवाले किसी भी व्यक्ति को अनन्त काल के लिए काल कोठरी में ठूंस देना। कई बार बंगाल के शासकों ने श्रीअरविन्द पर इस निरंकुश नियम का उपयोग करना चाहा ताकि श्रीअरविन्द को, जो उनके लिए खतरे की घण्टी थे, कार्यक्षेत्र से हटा सकें लेकिन वे आपस में एकमत न हो सके। इन्हीं दिनों वाइसराय के एक सचिव ने लिखा था कि अगर सभी विप्लवी सींखचों के पीछे बन्द कर दिये जायें और अकेले श्रीअरविन्द बाहर रहें तो वे फिर से एक नयी विप्लव-सेना तैयार कर लेंगे।

१९०८ की जुलाई में यह अफवाह फैली कि बहुत से राष्ट्रप्रेमियों

को बन्दी बनाया जायेगा, इस सन्दर्भ में श्रीअरविन्द ने अपने देशवासियों के नाम "कर्मयोगी" में "एक खुला पत्र" छापा जिसमें उन्होंने राष्ट्र के आदर्श की चर्चा की, कानून की हद में रहते हुए राजनीति के अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से दर्शाया। इसके बाद कुछ समय के लिए वे धमकियां शान्त हो गयीं लेकिन बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियां बन्द नहीं हुईं। इन गतिविधियों पर पूर्ण विराम लगाने के लिए सरकार ने यह निर्णय ले लिया कि सभी अवाञ्छनीय व्यक्तियों को जेल में भर दिया जायेगा। इस बार ५३ लोगों को ज़ेल भेजने की बात थी जिनमें श्रीअरविन्द भी थे। ऐसे समय श्रीअरविन्द को अन्दर से एक आदेश मिला जिसका उन्होंने तुरन्त पालन किया और इससे पहले कि पुलिस उन्हें पकड़ पाती, १९०९ की फरवरी में वे चन्दननगर के लिए रवाना हो गये जो फ्रेंच राज्य में था।

अब श्रीअरविन्द को एक भिन्न प्रकार की क्रान्ति में जुटना था—यह थी आध्यात्मिक क्रान्ति—जिसमें न केवल भारत के लक्ष्य की बल्कि पृथ्वी के भविष्य की बाज़ी लगी थी।